चतुर्थ अध्याय

ज्ञानरंजन की कहानियों में मध्यवर्ग का स्वरूप

ज्ञानरंजन हिन्दी कहानी के उन गिने-चुने हस्ताक्षरों में से हैं, जिन्होंने मध्यवर्ग के केन्द्र एवं उसकी परिधि दोनों पर अपनी दृष्टि रखी है । वे स्वयं भी इसी वर्ग की निर्मिति हैं, इसलिए इस वर्ग के अन्तर्विरोधों से भली-भांति परिचित दृष्टिगोचर होते हैं । उनकी कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज का शिक्षित मध्यवर्ग अपनी विविध प्रवृत्तियों के साथ विद्यमान है । इस वर्ग की विविध विडंबनाएं एवं इसका छद्म ही ज्ञानरंजन की कहानियों में व्यक्त व्यंग्य को धार देता है ।

ज्ञानरंजन की कथा-भूमि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी की चेतना-भूमि है । उनकी कथा-भूमि का पट-परिप्रेक्ष्य स्वातंत्र्योत्तर हिंदुस्तान के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का पट-परिप्रेक्ष्य है । 15 अगस्त सन् 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस देश के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन में आशा, उत्साह एवं उमंग की एक नई लहर आई थी । सदियों की गुलामी के बाद देश स्वतंत्र हुआ था, इस देश के निवासियों के सामने नव-निर्माण का प्रश्न था । यह वही समय था, जब परिवर्तन की पदचाप स्पष्टतः सुनी जा रही थी । स्वाधीनता के पश्चात् कुछ नई तरह की परिस्थितियाँ भी उद्भूत हुईं । देश का विभाजन, सांप्रदायिक दंगे, लाखों-लाख लोगों का बेघरबार हो जाना, शरणार्थियों की समस्या, देशी रियासतों के विलयन का प्रश्न, स्वाधीनता प्राप्ति के थोड़े ही दिनों के बाद महात्मा गांधी की हत्या । इन एक-एक घटनाओं का घटते जाना सामाजिक जीवन के संकट का गहरा जाना था । एक नए स्वाधीन देश के जनतांत्रिक ढांचे को मजबूत बनाने के लिए जिस सामाजिक परिवेश और राजनीतिक चेतना की जरूरत थी, उसका विकास बहुत धीमी गति से हो रहा था ।

ज्ञानरंजन की कहानियों में मध्यवर्ग की स्थिति एवं उसके स्वरूप पर उनके समय की परिस्थितियों के माध्यम से विचार किया जा सकता है । इस क्रम में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिस्थितियों के संदर्भ में ज्ञानरंजन की कहानियों के मध्यवर्ग की पड़ताल जरूरी है । इन्हें हम चेतना के धरातल पर ग्रहण कर सकते हैं ।

4.1 राजनीतिक चेतना का संदर्भ और ज्ञानरंजन की कहानियां :

राजनीतिक चेतना किसी भी कलाकार की रचना को समझने के लिए आवश्यक है । साहित्य में तो इसकी अपेक्षा और अधिक की जाती है । किसी भी युग का साहित्य उस युग में घटित होने वाले आंदोलनों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संयुक्त होता है । बुद्धिजीवी अपने युग की राजनीतिक हलचलों से विमुख होकर लिख ही नहीं सकता । रचना की सार्थकता की कई कसौटियों में से एक है रचनाकार की राजनीतिक चेतना । स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनीतिक रंगमंच के संदर्भ में डॉ. इंदु रश्मि कहती हैं–"स्वाधीनता काल की इस सामाजिक, राजनीतिक स्थिति का गहरा अहसास लेखकों और बुद्धिजीवियों को था और उनकी चिंता यह थी कि उपनिवेशवादी शक्तियों के चंगुल से देश आज़ाद तो हो गया और जनतांत्रिक मूल्यों को किस प्रकार स्थापित एवं सुदृढ़ किया जाए ।"[1] संभवत: इसीलिए फणीश्वरनाथ रेणु ने इलाहाबाद लेखक सम्मेलन के सन् 1942 के अधिवेशन में कहा था–"हमारे देश में चित्त का स्वराज्य नहीं हुआ है । हमारी बुद्धि मोहमुक्त नहीं हो सकी है । राष्ट्र-निर्माण की जिन परिकल्पनाओं के कार्य प्रारंभ हुए हैं, क्या उनसे हमारे दु:ख एवं दारिद्रय का सत्य ही अवसान होगा ।"[2] इतना ही नहीं समस्या के मूल में जाकर उन्होंने यह स्थापना रखी कि "तरह-तरह के वैज्ञानिक प्रतिष्ठानों के द्वारा सर्वसाधारण के बीच विज्ञान का प्रसाद वितरण कर देने से कुछ नहीं होगा । जनसाधारण की वैज्ञानिक दृष्टि को

खोलने की भी आवश्यकता है, वैज्ञानिक संपदा लाभ करने साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टि-लाभ श्रेयस्कर है ।"[3]

निश्चित तौर पर रेणु ने उस एकांगी दृष्टि को चुनौती दी थी, जिसमें कल-कारखाने और भारी उद्योग ही विकास का एक छद्म आवरण निर्मित कर रहे थे । रेणु जानते थे कि गांव-गांव में बिजली पहुँचाने के इस नाटक का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि यह महज एक नाटक बन जाएगा, जरूरत थी लोगों के मन-तन के अंधकार को दूर करने की । भारतीय भाषाओं एवं हिंदी के तेज़-तर्रार लेखक अच्छी तरह जानते थे कि विकास के नाम पर जो योजनाएँ शुरू हो रही हैं, वे नौकरशाहों और भ्रष्ट ठेकेदारों, अभियंताओं और बड़े व्यवसायियों के कारण टांय-टांय फिस्स होती रहेंगी । सचमुच 26 जनवरी, सन् 1950 के दस-बारह वर्षों के बाद ये तमाम चीजें एक-एक करके सामने आने लगीं । यही वजह है कि समाजवादी व्यवस्था के नाम पर एक विषम अर्थव्यवस्था इस देश पर लादी गई और इस देश का सर्वसाधारण व्यक्ति एक त्रासद स्थिति में जीने को अभिशप्त हुआ ; कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, अमृत राय, मार्कण्डेय, ज्ञानरंजन, कामतानाथ प्रभृति कथाकारों ने इस नए यथार्थ को रेखांकित करने के लिए इन्हीं कथा-भूमियों का अपनी कहानियों में प्रयोग किया । यह बात और है कि इनमें से अधिकांश कथाकार मध्यवर्ग से ही आए थे, इसलिए इनके कथा साहित्य में आर्थिक, सामाजिक संबंधों के विवेचन के साथ ही गहराई में बड़े मानवीय प्रश्नों को उभारने का प्रयास भी किया गया । यही वजह है कि इनकी कहानियाँ अपने समय के यथार्थ के स्वरूप वर्णन और संघर्ष-चेतना की कहानियाँ हैं । ज्ञानरंजन ने घाषित तौर पर राजनीति को अपनी कहानियों का विषय नहीं बनाया । उनके यहाँ ऐसा इसलिए है क्योंकि मध्यवर्ग, जिसके वे कहानीकार हैं, वह राजनीति में छद्म जीता है । उसे राजनीति एवं राजनीति के खेल खेलने वाले नेताओं से

उतना ही मतलब होता है, जितने से उसका स्वार्थ सिद्ध होता हो अर्थात् यहां अवसरपरक चिंतन कार्य कर रहा होता है । शिक्षित मध्यवर्ग मौका परस्ती में सिद्धहस्त होता है । 'बहिर्गमन' कहानी में ज्ञानरंजन मनोहर के माध्यम से ऐसे ही चरित्र की रचना करते हैं–"मनोहर का गणित लाजवाब था, उसको डर भी कुछ नहीं था क्योंकि उसके आगे पीछे एक अच्छा- 'अहो-अहो' दल था । ये सभी लोग अपनी छाती में हाय मानवता का दर्द और मुंह में लोकतंत्र की चुसनी लिए हुए थे । उन्होंने मनोहर को इस ऊँचाई तक पहुँचा दिया था, जहां ज़िंदगी बेयरा की तरह उसके कटोरे में शोरबा परोस रही थी ।"[4]

4.2 सामाजिक चेतना का संदर्भ और ज्ञानरंजन की कहानियां :

आज़ादी के बाद मोहभंग की प्रक्रिया ने पीढ़ियों के संघर्ष को जन्म दिया । दो पीढ़ियों के बीच हमेशा संघर्ष रहता है । आज आधुनिक जीवन की जटिल समस्याओं ने इसे तीव्र बनाया है । वास्तव में आज़ादी की लड़ाई में जो लोग लगे थे, उनका एक बड़ा हिस्सा फल मिलने के बाद उसका भोक्ता बन गया । उनका जीवन सुख-सुविधाओं एवं विलास का हो गया था, जहां कोई संघर्ष न था । ऊँचे सरकारी ओहदों और बड़े संस्थानों से जुड़े इन लोगों के सामने आज़ादी के कुछ साल बाद आयी हुई नयी पीढ़ी, जो अब जवान हो चुकी थी, वह अपने को वंचित और उपेक्षित महसूस कर रही थी । मध्यवर्ग से आए हुए कथाकार इन चीज़ों को समझ रहे थे, तभी तो कमलेश्वर इस बदलती हुई संवेदना एवं सामाजिक चेतना का जिक्र करते हुए कहते हैं–"नई पीढ़ी के सभी कथाकार मध्यवर्ग से आए थे । ऐसे घरों से जिनके ढांचे चरमराकर टूट रहे थे, पर जो अपनी विशष्टिता में आज भी हिंदू बना हुआ था, पर घरों से निकलकर आने वाली यह पीढ़ी हिंदू नहीं थी । कर्मकांडों से युक्त धर्म से निरपेक्ष यह पीढ़ी नव मानवीय संतुलन की खोज में थी । इस खोज में औद्योगिक विकास और शहरों की ज़िंदगी ने बहुत सहारा दिया, इस ज़िंदगी ने भले उसे नया संतुलन

न दिया हो पर पुराने से टूटने पर बाध्य अवश्य किया और यह बाध्यता ही नए की पहले चुनौती बनी।"[5]

निस्संदेह ज्ञानरंजन, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव सरीखे कथाकारों का दृष्टिकोण अधिक यथार्थवादी और मानवीय था, जिसके अंतर्गत परिवार और समाज के नए संबंधों को देखा जा सकता था एवं उसी ढंग से पारिवारिक और सामाजिक जीवन की भी विसंगतियों को चित्रित करने का प्रयास किया जा सकता था। कमलेश्वर कहते हैं कि–"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी ख़ासकर के साठोत्तरी हिंदी कहानी में इस सामाजिक संघर्ष का स्वर मुखरित हुआ है।"[6]

ज्ञानरंजन मुख्यतः सन् साठ के बाद के रचनाकार हैं। स्वतंत्रता के बाद का यह एक ऐसा वक्त है, जब भारतीय जनजीवन में विज्ञान और तकनीकी का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है, जनता की चेतना का स्वरूप भी यहां परिवर्तित होता दिखाई देता है। यह वही समय है जब कृषि में हरित क्रांति का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

इसके कारण कृषि उत्पादन की सामंती दृष्टि और शैली में परिवर्तन होता है। इस समय औद्योगीकरण की प्रक्रिया भी तीव्र होती दिखाई पड़ती है। इसके परिणामस्वरूप यहां पूंजीवादी व्यवस्था का रास्ता साफ़ हुआ एवं सामंती ढांचा समाज में बिखरता गया। यह वही समय था जब राष्ट्रीय एवं विदेशी पूंजी के परस्पर मिलन से भारत में शोषण की एक नई पद्धति विकसित होती है।

नई आर्थिक व्यवस्था ने सामाजिकता का नया मुहावरा भी निर्मित किया। यह नया मुहावरा व्यक्तिगत स्वार्थों पर आधारित था। ऐसे समय में परिवार जो समाज की एक इकाई है, उस पर प्रश्न खड़ा हो गया। मध्यवर्ग का सामाजिक स्वरूप सबसे पहले उसकी पारिवारिकता के संदर्भ से समझा जा सकता है।

4.3 मध्यवर्ग का पारिवारिक समीकरण एवं ज्ञानरंजन की कहानियां :

भारत की सामंती समाज-व्यवस्था की निर्मिति के रूप में कभी संयुक्त परिवार प्रणाली का आविर्भाव हुआ था । यह प्रथा भारत में शताब्दियों तक चलती रही थी । परंतु आधुनिक काल में जब पूंजी के वर्चस्व के दौर में बाज़ार आदमी एवं आदमी के बीच संबंधों का सूत्रधार बन बैठा, तब संयुक्त परिवार प्रणाली पर प्रश्न चिह्न लग गया । आधुनिक समाज़ में शिक्षा तथा विज्ञान के प्रसार, औद्योगीकरण तथा व्यक्तिवादी सोच ने संयुक्त परिवारों का विघटन कर दिया । उन्हें आज की व्यवस्था के लिए अनुपयुक्त घोषित कर दिया । संयुक्त परिवार में व्यक्तिगत सुख-दुःख पर परिवार को तरजीह दी जाती है । इसके परिणाम स्वरूप वहां कुंठा एवं घुटन भी पैदा होती है । ज्ञानरंजन की कई कहानियों में संयुक्त परिवार को एक सांप्रतिक प्रश्न के रूप में उठाया गया है । उनकी कहानियों के संबंध में कुमार कृष्ण का कहना है–"ज्ञानरंजन की कहानियाँ चेकोस्लोवाकिया की नहीं अपने देश के मध्यवर्गीय घर, परिवार, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहन अर्थात् रिश्तों के बीच में घटित होती कहानियाँ हैं । ज्ञानरंजन मानवीय संबंधों का मुआयना करने वाले कहानीकार हैं । वह मानवीय रिश्तों की महीन पड़ताल करते हैं ।..... जीवन के प्रति ज्ञानरंजन की दृष्टि बड़ी तीखी और आलोचनात्मक है । वे अत्यंत क्रूर होकर मानवीय संबंधों की छानबीन करते हैं और व्यक्ति के भीतर छिपे सही चोर को पकड़ लेते हैं ।"[7] इन्हीं संदर्भों में यदि नरेन्द्र मोहन के शब्दों में कहा जाय तो कहा जा सकता है– "ज्ञानरंजन की कहानियों में संबंधों के फलक पर न तो मनोवैज्ञानिक तथ्यों की संपुष्टि का प्रयत्न है और न संबंधों का संपूर्ण निषेध करने वाला आवेश । वह संबंधों को चीर-फाड़ करके, बिना कोई निष्कर्ष दिए, उन्हें स्थगित कर देता है । वह इस तथ्य से भलीभाँति परिचित है कि 'अभी संक्रांति और अंजाम की तरफ़ केवल शुरुआत हुई है' (शेष होते हुए) । इस दृष्टि से लेखक की चार

कहानियाँ- 'शेष होते हुए" 'पिता', 'संबंध' एवं 'फेंस के इधर और उधर' देखी जा सकती हैं ।"[8] 'शेष होते हुए' कहानी में संयुक्त परिवार का बिखराव साफ़-साफ़ देखा जा सकता है । इसी कहानी के संदर्भ में नरेन्द्र मोहन आगे लिखते हैं–"'शेष होते हुए' कहानी में परंपरागत पारिवारिक बिंब के खंडित होते जाने की प्रक्रिया मौजूद है । घर पहुँचने पर मझले की मनोदशा, माँ, पिता, भाई-बहन, भाभी का निहायत उबाऊ और ठंडा-रूखा प्रेम, वात्सल्य और सौहार्द्र जैसे पारिवारिक संस्कारों के चुकते जाने की ओर संकेत करता है । परिवार के सभी सदस्य स्वयं में सिमटे हुए हैं और एक-दूसरे से कटे और अलग पड़े हैं । वे एक दूसरे को दोष देते हैं, खीझते हैं, क्रोधित होते हैं, रौब डालते हैं और पोज करते हैं ।"[9] ज्ञानरंजन स्वयं इस कहानी में लिखते हैं–"मझले ने देखा, एक ही घर में कई घर हो गए हैं । हर व्यक्ति के कमरे में दूसरे से अलग एक स्वतंत्र और पृथकता ज्ञापित करने वाला स्वभाव है । निजी व्यवस्था की प्रवृत्ति कुछ लोगों में छोटे पैमाने पर अंदर ही अंदर प्रयत्नशील है ।"[10] ज्ञानरंजन यहां स्पष्टतः संकेत करते दिखाई पड़ते हैं कि परिवार नामक संस्था को कायम रखनेवाले हमारे जातीय संस्कारों के अवशेष आज की नई परिस्थितियों से टकराकर चकनाचूर हो रहे हैं एवं इनका प्रभाव संबंधों पर पड़ रहा है । ठीक इसी प्रकार उनकी 'पिता' कहानी दो पीढ़ियों के अंतर एवं द्वंद्व को तो दिखाती ही है, उसके साथ ही संबंधों में आ रहे परिवर्तन की भी पड़ताल करती है ।

ज्ञानरंजन की कहानियाँ पारिवारिक संकट को यथार्थता से संयुक्त करके उसे वर्त्तमान युग के मानवीय संकट के रूप में व्यक्त करती हैं । 'संबंध' कहानी में भी ज्ञानरंजन ने संयुक्त परिवार की समस्याओं की ओर संकेत किया है । स्थूल दृष्टि से देखने पर यह कहानी क्रूरता एवं अमानवीयता की कहानी लग सकती है, जैसा कि डॉ. परमानंद श्रीवास्तव कहते भी हैं– "संबंध कहानी में पाठक एक

अप्रत्याशित क्रूरता, एक तरह के अमानवीकरण का आभास पाएंगे....."[11] परंतु वस्तु-स्थिति ऐसी है नहीं। 'कफ़न' कहानी में प्रेमचंद ने निम्नवर्ग के संदर्भ में जो स्थिति दिखलाई थी, वही यहां ज्ञानरंजन मध्यवर्ग के संदर्भ में करते दीख पड़ते हैं। 'कफ़न' में मरती हुई बुधिया के पास कई कारणों से घीसू एवं माधव नहीं जाते ; उन कारणों में से एक उनकी लाचारी भी है। वे बुधिया के रोज़ तिल-तिल मरने को देख चुके हैं एवं उन्हें रोज मरने की ज़गह उसका एकबारगी मरता ही ठीक लगता है परंतु इससे उनके निष्ठुर होने की बात नहीं कही जा सकती है, अन्यथा माधव का शराब के नशे रुदन कभी नहीं हो सकता था एवं घीसू यह कभी न कहता–"क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया-जाल से मुक्त हो गई। जंजाल से छूट गई। बड़ी भाग्यवान थी जो इतनी जल्दी माया-मोह के बंधन तोड़ दिए।"[12] 'संबंध' कहानी में व्यवस्था द्वारा पैदा की गई स्थितियों में अपने भाई को तिल-तिल मरते देखने का साहस कथा नायक 'मैं' को नहीं है, इसीलिए तो वह सोचता है–"दरअसल मैं तपाक से अपने भाई के बारे में यह सोचने पर मजबूर हो गया कि उस बेचारे को मर ही जाना चाहिए। मैं नहीं जानता कि इस ख़याल की मैंने चुपचाप खोज की हो। हो सकता है इसमें कुछ दया भाव हो लेकिन हक़ीक़त यह है कि मैं काफ़ी देर बाद भी यही चाहता रहा कि वह आत्महत्या कर ले और एक बहुत ही घिसटती हुई निर्मम समस्या का समाधान हो जाय।"[13] क्या यह स्थिति असाध्य एवं मारक रोग में दर्द से बिलबिलाते उस आदमी की-सी नहीं है, जिसके परिजन उसके कष्ट को न देख सकने के कारण उसके लिए 'मर्सी किलिंग' (दया-मृत्यु) की मांग करते है ? तो क्या वे उससे प्रेम नहीं कर रहे होते ?

'फेंस के इधर और उधर' कहानी में भी कमोबेश यही स्थितियाँ साक्षात्कृत की जा सकती हैं। इस कहानी में ज्ञानरंजन एकल परिवार एवं

संयुक्त परिवारों के पार्थक्य को और साफ़-साफ़ समझाते हैं । इस कहानी में एकल परिवार तो अपनी ज़िंदगी अपने में मस्त होकर जी रहा है परंतु संयुक्त परिवार इस एकल परिवार से चिढ़ते हुए भी उसके प्रति आकृष्ट है एवं उसके जैसा न बन सकने की मजबूरी में कुंठित हो रहा है । इस कारण वह अपनी ज़िंदगी को अपनी तरह से नहीं जी पा रहा है ।

ज्ञानरंजन ने **एकल परिवारों की समस्याओं** को भी अपनी दृष्टि से ओझल होने नहीं दिया है । वे उस पर भी निरंतर दृष्टि बनाए रखते हैं । 'कलह' कहानी धीरे-धीरे चुकते जा रहे एकल परिवार के कष्ट को सामने लाती है । इस कहानी में एकल परिवारों में कमाने वाले व्यक्ति का स्वैराचार एवं कर्त्तव्य विमुखता, इन दोनों के बीच पिसती युवा पीढ़ी की व्यथा-कथा है । युवा पीढ़ी का अंधकारमय भविष्य एवं उसकी असमर्थताओं का प्रतिनिधित्व करती स्वाति, अपने परिवार को टूटते हुए देखती है और देखती है अपने माँ-बाप का मध्यवर्गीय छद्म, जहां सब कुछ टूट जाने पर भी तोप-ढंककर रखा जाता है–"अक्सर गयी रात तक घर में कलह होती है लेकिन सुबह होते ही जैसे सारी अवांछनाएँ किसी जादुई तहख़ाने में ढांप दी जाती हैं । घर को साफ़-सुथरा रखा जाता है । अतिथियों का भरपूर स्वागत होता है । समय से सब खाना खाते हैं और लोग हमारे परिवार के बारे में उम्दा रायें भी कायम किए हुए हैं ।"[14]

मध्यवर्गीय परिवारों में गौर वर्ण एवं श्याम वर्ण के लोगों के प्रति व्यवहार में भी अंतर देखने को मिलता है । इस वर्ग के लोग **गौर वर्ण को अधिक महत्त्व** देते हैं, तभी तो 'शेष होते हुए' कहानी में अम्मा "मफ़ले को घूरती हुई कहती है– कितने काले होते जा रहे हो तुम ? शीतल से भी ज़्यादा । जब पैदा हुए थे

तो गेंहुआं रंग था तेरा ।"[15] मध्यवर्ग की यह प्रवृत्ति आज मीडिया पर भी हावी है और यह सिद्ध करता है कि आज किस तरह मध्यवर्गीय प्रवृत्ति का हर ज़गह बोलबाला है ।

मध्यवर्गीय परिवारों में बूढ़े लोगों की कोई विशेष औकात नहीं नज़र आती है । यहाँ वृद्ध लोग अर्थोपार्जन से अलग रहते हैं, अतः परिवार में उनका महत्त्व घट जाता है । मध्यवित्त परिवारों में तो मान-सम्मान अर्थ सापेक्ष ही होता है एवं कमानेवाला इसीलिए वहां शक्तिशाली होता है और घर में उसकी तूती बोलती है । 'शेष होते हुए' कहानी में बाबा की कोठरी का उनके बाद हाल देखने लायक है, जिससे सहजता से उनके प्रति परिवार के लोगों का व्यवहार समझा जा सकता है–"बाबा की कोठरी में लोहा-लंगड़, कोयला-लकड़ी और गोईंठा आदि भर दिया गया । बहुत पुराना एक टुटला हारमोनियम भी वहीं डला है । कबाड़ख़ाना । यहीं बाबा रामायण पढ़ा करते थे ।"[16] इसी कहानी में घर के बुजुर्ग माँ-बाप की घर में स्थिति भी दर्शनीय है । यहाँ उनकी दयनीयता प्रकट हुई है–"माँ-पिता के कमरे में कुछ नहीं है । उनके लिए किसी को फुरसत नहीं । स्वयं उन लोगों को भी अपने लिए कुछ आवश्यक लगता है पता नहीं ।"[17] ज्ञानरंजन से **वृद्ध पुरुष की लाचारी** भी छिपी नहीं है । मध्यवर्गीय उम्रदराज पति जब अपने युवा बच्चों की अनीति देखता है तो उन्हें कुछ नहीं कह पाने या डाँट पाने की बेवसी में वह अपना क्रोध अपनी पत्नी पर ही उतारता है, जो उसी की तरह वृद्ध होती है–"जब भी माँ को देखते हैं (पिता), उनकी आँखें अंगार हा जाती हैं और ये साफ़-साफ़ चिल्लाने लगती हैं कि तारा की लापरवाह और ढीठ प्रवृत्तियों की समस्त जिम्मेदारी अम्मा के ऊपर है । यहां पर मझले के पिता हरे दूसरे मध्यवर्गीय पिता सरीखे ही लगते हैं ।"[18] ऐसे में ज्ञानरंजन लाचारी और बेचारगी के बीच सबकी अनीति को सहकर भी सबको जोड़ने वाली उस बूढ़ी

माँ के हाल पर भी नज़र रखते हैं–"वह अपने मरने तक सब कुछ बचा और सुरक्षित देखते रहने की तमन्ना लिए खड़ी है। चाहे वह घी का ख़ाली डिब्बा हो, कुर्सी हो या छोटे भाई का शरीर।"[19]

मध्यवर्गीय परिवारों में बच्चों की हालत भी बड़ी विचित्र होती है। छोटे बच्चे माँ-बाप एवं घर की समस्याओं के बीच किस प्रकार संघर्ष करते रहते हैं ज्ञानरंजन ने मध्यवर्ग की भूमि पर इस बात की भी पड़ताल की है। वे यह साफ़-साफ़ दिखलाते हैं कि बड़ों की दुनिया की हलचल बच्चों को भी प्रभावित करती है। 'कलह' कहानी में तनावपूर्ण जीवन जीती माँ कहती है–"पढ़ो-लिखो नालायकों इधर-उधर क्या देख रहे हो। क्या पिटने की तबियत है ?"[20] 'अमरूद का पेड़' कहानी में भी स्थिति इससे कुछ भिन्न नहीं है–"तड़के उठकर मुझे इस बात का बड़ा खेद हुआ कि शायद हमारे प्रति घर के बड़ों में कोई स्वागत नहीं है।"[21] दरअसल पुरानी सामंती व्यवस्था में स्त्रियाँ और बच्चे अर्थोपार्जन से दूर थे, अतः उनका परिवार में कोई विशेष महत्त्व नहीं था। यह सामंती प्रवृत्ति मध्यवर्ग में भी लंबे समय तक बनी रही और यह उसकी एक बहुत बड़ी कमजोरी है। बच्चे इससे उपेक्षा और कुपोषण का शिकार होते गए और उनमें हीनताबोध पैदा हो गया। 'गोपनीयता' कहानी में 'पाशा' (बच्चा) पिटने के बाद भी पिता के सामने खड़ा रहा और जीजी के पुचकारने पर रोने लगा। "घर में सबकी जरूरत होती है लेकिन हमारी (बच्चों की) जरूरत शायद हर चीज़ में नहीं है।"[22]

मध्यवर्गीय परिवारों में लड़के एवं लड़कियों में फर्क़ करके देखा जाता है। लड़कियों को यहां वह सम्मान नहीं मिलता है, जो उन्हें मिलना चाहिए। उन्हें

बोझ समझा जाता है । ज्ञानरंजन कबाड़ख़ाना में एक ज़गह लिखते हैं–"नर-मादा की दृष्टि से घर में असंतुलन था । दोस्त, परिचित, रिश्ते नातेवाले और कीर्तनिया औरतें किसी के आने से भी फर्क़ नहीं पड़ता था ।"[23] 'शेष होते हुए' कहानी ने मध्यवर्गीय परिवारों का यह चरित्र भी सामने रखा है–"पिता खुश नहीं हैं, फिर भी टीनू की आवश्यकताएं हद से बाहर पूरी कर रहे हैं, अम्मा निराश हैं, फिर भी तारा के लिए पिता से सिफारिशें किया करती हैं, लड़ती हैं ।"[24] यहां पिता टीनू की बात मान जाते हैं पर तारा के लिए माँ को लड़ना भी पड़ता है । 'फेंस के इधर और उधर' में कथानायक का यह सोचना भी इसी भेद-दृष्टि की ओर संकेत करता है–"पता नहीं, इसमें कहां तक सचाई है, लेकिन उस लड़की के माँ-बाप की आँखों में अपने घर की छाती पर एक जवान लड़का देखकर, अपनी लड़की के प्रति वैसा भय नहीं रहता जैसा मेरे दोस्तों को देखकर मेरे पिता के मन में पप्पी के प्रति भर जाता है ।"[25] 'दिवास्वप्नी' कहानी भी बहुत कुछ ऐसा ही कहती है–".....लड़कियों में साधारण ढंग से किसी को भी प्यार कर लेने का माद्दा होता है, उसी सुलभ गुण के साथ मीरा भी इंदो को चाहने लगी थी ।"[26]

4.3.1 मध्यवर्गीय समाज में दांपत्य जीवन एवं ज्ञानरंजन की कहानियाँ :

विवाहोपरांत स्त्री-पुरुष गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं और उनका मेलापक बनता है दांपत्य प्रेम । सुखी दांपत्य जीवन का आधार है पति-पत्नी का परस्पर विश्वास, रिश्तों में संतुलन, प्रेम एवं समर्पण की भावना । यदि दांपत्य जीवन से विश्वास समाप्त हो जाए, तो दांपत्य जीवन कष्टकर बन जाता है । ज्ञानरंजन ने तो 'दांपत्य' शीर्षक से एक कहानी की भी रचना की है ।

वर्त्तमान समय में दांपत्य जीवन एक तरह से समझौतापरक हो गया है। विवाह होते ही जीवन से प्रेम समाप्त होने की स्थिति पैदा हो जाती है। 'हास्यरस' कहानी में 'मैं' कहता है–"अभी-अभी विवाह होने के पूर्व मुझमें खुशी और तत्परता थी और अब मैं दुखी हो गया हूँ।"[27] इस संदर्भ में डॉ.परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं–"'हास्यरस' में ताजा प्रेम विवाह प्रसंग में बदलते ही हास्यास्पद हो जाता है– इससे भी अधिक ऊब, भय, चिंता, व्यर्थता की प्रतीति कराने लगता है।"[28] वस्तुत: विवाहोपरांत कथानायक में रिश्तों को लेकर एक प्रकार की ऊब पैदा होती है। विश्वंभरनाथ उपाध्याय इसलिए कहते हैं–"'हास्यरस' में विडंबक ब्रूडिंग का रोचक दृश्य है। यहाँ भी समस्या वही है कि संबंधों में परवशता न हो। यहाँ इस समस्या को त्रासद हास्य से दिखाया गया है। विवाह के बाद पति अपनी आज़ादी का अंत देखता है.....अपने समाज में एक बार विवाह के बंधन में बंध जाने के बाद मुक्ति नहीं है, न स्वतंत्र संबंधों की इजाजत है, अतएव विवाह किसी स्वचेतना से समृद्ध, व्यक्ति के लिए सचमुच त्रासद ही है।"[29]

ज्ञानरंजन की 'दांपत्य' कहानी का कैनवास भी कुछ-कुछ ऐसा ही है। यहाँ भी जीवन की जड़ में जो समझौता है, उसका ही एक रूप है दांपत्य। यहाँ इसकी ही पड़ताल है। इस समझौते के कारण जीवन से रस समाप्त हो गया है, उसे जितनी ही कोशिश के साथ भरा जाय, वह और ख़ाली, खोखला और व्यर्थ होकर रह जाता है। वस्तुत: इन दोनों ही कहानियों में विवाह की स्वीकृत मान्यताओं का मजाक उड़ाया गया है। इसी संदर्भ में यदुनाथ सिंह लिखते हैं–"जो विवाह स्वीकृत अर्थ में प्रेम को एक निश्चित अर्थ और गांभीर्य प्रदान करता है, वह नए परिवेश और समय में, एकदम अनिश्चित स्थिति में जी रहे युवा मन में भय और आशंकाएं उत्पन्न करके उस हास्यरस का आलंबन बनता

है । .....इन कहानियों में बदले हुए परिवेश और समय का बोध बदली हुई संवेदना और सोच के माध्यम से होता है । कहानीकार भले ही दोनों चीज़ों को रिजेक्ट न करता हो, उनकी हास्यास्पदता का रस जरूर लेता है ।"[30]

मध्यवर्गीय पति पर विवाहोपरांत चिंता और जिम्मेदारियों का बोझ पड़ जाता है । "'हास्यरस' में प्रेमी युवक-युवती कोर्ट से सिविल मैरिज करके निकलते हैं और साथ चलने वाले मित्रों तथा आस-पास के सामान्य जीवन की गति को देखकर प्रेमी युवक एक अजीब तरह की निराशा का अनुभव करता है । उसे लगता है विवाह के बाद युवती पहले जैसी 'प्रेरणादायक स्त्री' नहीं रह गई है बल्कि तेज़ी से 'एक सामान्य पत्नी' का रूप अख्तियार करती जा रही है और इस प्रकार उसके साथ कहीं बहुत बड़ा छल हो गया है । प्रेम के क्षणों का ताज़ापन कितना शीघ्र वैवाहिक जीवन की एकरसता की ओर बढ़ने लगा है, यह भयावह कल्पना युवक को झकझोर डालती है । दूसरी ओर यद्यपि युवक अपने भीतर होनेवाले परिवर्तन की ओर पर्याप्त सचेत नहीं होता लेकिन पाठक यह देख़कर चौंक सकता है कि युवक स्वयं भी स्त्री के प्रति एक घिसे-पिटे पुरुष सुलभ सस्ते वाक्य को मन-ही-मन कहता है और उस मध्यवर्गीय पुरुष-स्त्री संबंधों के बासीपन को अनायास ही उजागर कर देता है जिसकी भयावह कल्पना ने उसे प्रारंभ में झकझोर दिया था"[31] । "मैं यह अच्छी तरह समझता हूँ, वह अपने को जिम्मेदार दिखा रही है और मेरे सीटी फूँकने पर सचमुच नाराज़ नहीं है । मैंने उसको मौन पद्धति से घूरा क्यों 'बच्ची, लड़िया रही हो तुम झूठा गुस्सा दिखाती हो, जरा आगे देखना क्या होता है, न तुम्हारी मस्ती कुचल दी तो कहना' ।"[32] यहाँ दांपत्य जीवन के प्रति एक प्रकार की गैर-रोमांटिक नकारात्मकता देखी जा सकती है । 'दांपत्य' कहानी में भी नायक स्वचेतस् है । उसके तनाव का कारण है, अपने मूड के अनुसार वैवाहिक जीवन को न जी सकना है । इस संदर्भ में

विश्वंभरनाथ उपाध्याय का कथन है–"स्वचेतन व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक जटिलता का जाल किस तरह उसे असामान्य और व्याकुल बनाता है, और इससे किस तरह रोचक स्थितियाँ उपजती हैं, यह 'दांपत्य' में पूरी तरह अंकित है। लेकिन यह भी लगता है कि लेखक या नायक की वहशत और दंश का कारण बहुत भीतरी है।"[33] इन कहानियों में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी या विचारवान व्यक्ति का चिंतन प्राय: निरर्थक एवं खोखले रूप में सामने आता है और उसकी जीवन-पद्धति या चेतना में किसी विकास-क्रम की कोई संभावना नहीं दिखती है।

मध्यवर्गीय पत्नी की मानसिकता में विवाहोपरांत एक प्रकार की निश्चिंतता लक्षित होती है ; यों उसमें कोई विशेष परिवर्तन ज्ञानरंजन की कहानियाँ लक्षित नहीं करतीं जबकि उसके पति का निर्दोष किस्म का आह्लाद डर एवं आशंका में परिवर्तित हो जाता है। वस्तुत: विवाहोपरांत पति-पत्नी दोनों के जीवन की स्थितियों में अंतर पैदा होता है। 'दांपत्य' कहानी में ज्ञानरंजन लिखते हैं–"विवाह के पूर्व अस्पृश्य जीवन बिताने वाली औरतें शादी के बाद अपने आदमियों पर घटा की तरह टूटती हैं। ये स्त्रियाँ अपनी अविवाहित अवस्था में बड़े संयम के साथ सब कुछ देखती रहती हैं और ध्यान रखती हैं कि शादी होने के बाद पति के साथ उन्हें क्या-क्या करना है।"[34]

वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी का परस्पर विश्वास अति आवश्यक है। इसके बिना जीवन कष्टकर हो जाता है एवं शक़ की बीमारी लग जाती है। परंतु सांप्रतिक मध्यवर्गीय समाज में यह एक बड़ी समस्या है कि पति या पत्नी को एक-दूसरे पर विश्वास नहीं रहा है। ज्ञानरंजन ने भी अपनी कहानियों में इस स्थिति का वर्णन किया है- "ऐसी स्त्रियों के चरित्र का क्या भरोसा किया जाए ?

कब किस दूसरे पर फिसल पड़ें । फिर भी देखा जाएगा । मुझे काफ़ी सावधानी बरतनी पड़ेगी ।"[35]

मध्यवर्गीय परिवारों में प्रायः 'अरेंज्ड मैरिज' का चलन होता है, जहां माँ-बाप के द्वारा लड़के-लड़की का विवाह ठीक कर दिया जाता है । कभी-कभी उनकी आपस में बन नहीं पाती, जिससे उनका वैवाहिक जीवन कष्टकर हो जाता है । इसका कारण कभी उम्र तो कभी मानसिक स्तर का बड़ा अंतर होता है । बेमेल विवाह की परिणति बड़ी दारुण होती है । 'दिवास्वप्नी' के कथानायक इंदो को मिसेज़ भट्टाचार्या का व्यवहार विचित्र लगता है–"ये मिसेज भट्टाचार्या भी खूब हैं । हमेशा साथ लगी रहना चाहती हैं । इनका पति भी अजीब है । सबेरे-शाम स्टैंड पर ब्रुश लिए पोस्टर बनाता रहता है । अपनी पत्नी को नहीं देखता । ....उस दिन फ़्लावर-शो में कैसे सट-सट के चल रही थीं । कितनी बार मेरी कलाई पकड़ने की कोशिश की ।"[36] 'छलांग' कहानी में ज्ञानरंजन ने शारीरिक अवस्था का पति-पत्नी का अंतर एवं उसकी परिणति दिखलाने की कोशिश की है–"जब सिलसिला हुआ तो जरूरी था कि श्रीयुत् ज्वेल पर ख़ास ध्यान दिया जाए । वह बूढ़ा था, केवल काला नहीं लेकिन फिर भी उस तड़कती हुई आकर्षक औरत का पति था ।"[37]

कभी-कभी बेमेल विवाह की वजह से मध्यवर्गीय परिवारों में पति-पत्नी के बीच एक तीसरे व्यक्ति का आगमन हो जाता है । इससे 'दांपत्य प्रेम' तो दुर्बल होता ही है, साथ ही साथ कभी-कभी बड़े घातक परिणाम लाता है पति या पत्नी के लिए, जिसकी मार उनके बच्चों को भी झेलनी पड़ती है । 'कलह' कहानी में ज्ञानरंजन ने मध्यवर्गीय परिवारों की इस समस्या की ओर भी संकेत किया है । इस कहानी की नायिका स्वाति को अपने पिता और अपनी माँ के

रिश्तों के बीच किसी तीसरे की उपस्थिति महसूस होती है–"गेस्ट-हाउस में एक पुरुष है । वह उसका बाप है । एक औरत है । लेकिन माँ नहीं है वह । और वहाँ कोई नहीं है ।"[38]

4.4 सामाजिक संबंधों में छद्म :

सामाजिक संबंधों में छद्म एवं पाखंड का सर्जन मध्यवर्ग की विशेषता है । वह रूढ़ रीति-रिवाजों को जड़ समझते हुए भी उनसे बुरी तरह से चिपटा रहता है । ज्ञानरंजन की कहानी 'यात्रा' में कथानायक 'मैं' किसी आत्मीय के मरने की ख़बर पाकर अपने शहर तक पहुँचने की यात्रा में गर्म हलुआ और संतरा खाता हुआ, जीवन से "अशिष्ट तरीके से चिपटा हुआ (यह व्यक्ति) यात्रा की समाप्ति पर उस स्थल पर पहुँचता है, जहाँ उसके रोने और खुश होने के बीच फर्क़ ख़त्म हो चुका है ।"[39] सचमुच जीवन की इस सामाजिक विसंगति और विडंबना को राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक बदलाव के चलते ही अंत में हम समझ पाते हैं ।

यह घोर विडंबनात्मक कहानी ज्ञानरंजन को इतनी भाती है कि वे आगे कहते हैं–"यात्रा उतना ध्यान आकर्षित नहीं कर पाई जितनी कि मेरी तमन्ना थी क्योंकि उसमें झटकेदार आदि एवं अंत नहीं है और फिर वह 'घंटा' का मुकाबला भी नहीं कर सकती, लेकिन मुझे अपनी यह कहानी किसी औचित्यपूर्ण कविता की तरह से बहुत हिलाती है ।"[40]

निश्चित तौर पर ज्ञानरंजन बदलते हुए परिवेश और परिदृश्य में बढ़ती हुई अमानवीयता और अमानुष होने तथा संबंधों के छीजने का जो चित्र खींचते हैं, वह मध्यवर्गीय अवसरवादिता और अजनबीपन का चरम क्षण है, जहां आदमी

के संवेद्य तंतु बिलकुल सूखते जा रहे हैं । ज्ञानरंजन के कथा-संसार के अथ एवं इति के दिग्दर्शन के लिए स्वातंत्र्योत्तर ख़ासकर साठोत्तरी हिंदी कहानी की चेतना भूमि का विकास, आज़ादी के बाद के हिन्दुस्तान के बदलते हुए नाना प्रकार के परिप्रेक्ष्यों के संदर्भ में ही समझा जा सकता है । 'यात्रा' कहानी के कथानायक के लिए दुखी होने से अधिक जरूरी है दुखी दिखना । मध्यवर्गीय समाज का व्यक्ति अपने आस-पास एक ऐसा जाल बुनता है, जो झूठ के धागे से बनता है । किसी के दुःख में यह वर्ग तनिक भी संवेदित नहीं होता परंतु स्वयं को संवेदनशील दिखलाने के लिए रोने-धोने एवं मर्माहत होने का नाटक अवश्य करता है । वर्तमान मध्यवर्गीय आदमी के कितने चेहरे हैं, कह पाना कठिन है–"पहले मैं छह-सात तरीके के चेहरे बना सकता था । अब चेहरे में कुछ पत्थर शामिल हो गया है और मुश्किल से दो-तीन तरह के चेहरे ही बन पाते हैं । अभिनय और कला का रिश्ता आत्मा से है । मैंने दृढ़ता से सोचा, मैं आत्मा की रक्षा करूँगा ।"[41]

मध्यवर्गीय व्यक्ति अपने पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में छद्म के द्वारा प्रतिष्ठा पाना चाहता है । वह इस मिथ्या प्रतिष्ठा के लिए पाखंड रचता है ; 'गोपनीयता' कहानी में पिता द्वारा बेवजह अपने बेटे (पाशा) की पिटाई इस बात का प्रमाण है । अपनी झूठी इज्ज़त को जीजी की इज्ज़त से जोड़कर देखने के क्रम में वह बच्चों के साथ बुरा व्यवहार करता है और अंततः गोपनीयता को भंग होने से बचाने के लिए पूरी चेष्टा करता है ।

मध्यवर्गीय व्यक्ति जो शहर में रहा है, यदि वह गांव चला जाए तो वहाँ की परिस्थितियों एवं लोगों के बीच उसे घुलने-मिलने में कठिनाई होती है । ज्ञानरंजन ने अपनी कहानियों में **गांव एवं शहर के जीवन एवं समाज का फर्क़**

भी दिखलाया है। 'चुप्पियां' कहानी का करन कुछ-कुछ ऐसी ही स्थितियों में फंस जाता है–"गांव के अधिकांश लोग उसे हिकारत से देखते हैं। शहरी जो बना हुआ है। और कुछ लोग तो अकारण उबल भी पड़ते हैं। गांव की औरतों में उसने स्वयं अपने बारे में कानाफूसी सुनी है।"[42] कुछ-कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है गांव और क़स्बे के आदमी को शहर जाकर। वहां उसे बड़ी मीठी उदारता से यह अहसास कराया जाता है कि वह गंवार है और शहरी क़ायदे उसे नहीं मालूम। इसी क्रम में मिथ्या सहानुभूति भी दिखाई जाती है जिससे व्यक्ति को अपना ओछा होना एवं औरों का बड़ा होना साफ़-साफ़ समझ में आ जाए। ज्ञानरंजन ने गांव एवं शहर के समाजों में नए आए हुए आदमी का कष्ट भी अपनी कहानियों में दिखलाने की कोशिश की है और उसका हीनताबोध भी प्रस्तुत किया है–"वह क़स्बे पर बहुत दया दिखाता था। सब कुछ हो जाने के बाद वह रूमाल झाड़ कर उठ खड़ा होता, मुझे बस में ढकेल कर चला जाता।"[43] ऐसा करते हुए एक तरफ़ शहरी मध्यवर्ग क़स्बे या गांव के आदमी पर अपना सिक्का भी जमा लेता है, वहीं दूसरी तरफ़ वह उसे गांव एवं शहर का प्रकारांतर से पार्थक्य भी बतला देता है। शहरी व्यक्ति की स्थिति शहर में आए किसी क़स्बे या गांव के व्यक्ति की तरह की तब होती है, जब वह विदेश से लौटे अपने किसी प्रवासी भारतीय मित्र या परिजन से मिलता है। उस समय उसे वही छोटापन महसूस होता है जो ग्रामीण व्यक्ति को शहर आने पर होता है। 'बहिर्गमन' कहानी में जो स्थिति मनोहर के आगे 'मैं' की है, वही स्थिति सोमदत्त के आगे मनोहर की हो जाती है–"मैं समझता हूँ, तुम मेरा उपहास नहीं कर रहे हो लेकिन फ्रिज मैं जल्दी ही ख़रीद लूंगा।"[44] ज्ञानरंजन अलग-अलग व्यवस्थाओं के बीच पल रही ज़िंदगियों का अलग-अलग चेहरा बड़ी चतुराई से सामने ले आने की कोशिश करते हैं। क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय धरातलों की अलग-अलग पहचान उनके दौर के दूसरे कथाकारों में प्रायः नहीं मिलती है।

4.5 मध्यवर्ग का सांस्कृतिक संदर्भ एवं ज्ञानरंजन की कहानियाँ :

वैश्विक रंगमंच पर भारतीय संस्कृति की अपनी एक अलग पहचान है। आचार-विचार, लोक-व्यवहार, जीवन-मूल्य, रहन-सहन, खान-पान, उत्सव, वेश-भूषा एवं जीवन-मरण-विवाह विषयक रीतियाँ इन सबसे इस तथ्य की परीक्षा की जा सकती है। 'नालंदा विशाल शब्द सागर' में लिखा है कि संस्कृति अर्थात् "किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र आदि की वे सब बातें जो उसके मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक होती हैं।"[45] भारतीय संस्कृति मानवीयता से संपृक्त मूल्यों का पुंज है। परवर्ती समय में मानव विकास से संबंधित ये मूल्य दृढ़ होकर परंपरा का अंग बन गए और परिवर्तित स्थितियों में जड़ होते गए क्योंकि वे रूढ़ हो गए थे, उनमें संशोधन नहीं हो रहा था।

सांस्कृतिक संकट को व्यापक अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में यांत्रिक विकास से जोड़कर और राष्ट्रीय परिवेश में समाज-व्यवस्था से जोड़कर समझा जा सकता है। स्वातंत्र्योत्तर सांस्कृतिक चेतना के निर्माण और विकास में इन दोनों का योगदान है। उनके परिणामस्वरूप आज संस्कृति संबंधी धारणा में परिवर्तन आया है। पहले की तुलना में आचार-विचार, रहन-सहन, जीवन-दर्शन, नैतिकता-बोध आदि की एक नई अवधारणा विकसित हुई है, जिसे हम स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में देख सकते हैं। इतना ही नहीं संस्कृति संबंधी विसंगतियों और विडंबनाओं का चित्रण भी इन कहानियों में उपस्थित किया गया है। ज्ञानरंजन की कहानियां इस दृष्टिकोण से अनुपम हैं।

4.5.1 मध्यवर्गीय संस्कार और ज्ञानरंजन की कहानियाँ :

मध्यवर्ग के अपने कुछ संस्कार होते हैं । इन संस्कारों में कहीं-कहीं थोथापन भी होता है । ज्ञानरंजन की कहानियां उन थोथे संस्कारों या रूढ़ियों पर प्रहार करती हैं ।

मध्यवर्गीय समाज में युवक एवं युवती को मित्र के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है । वे मित्रवत एक-दूसरे को घर जाकर मिल नहीं सकते । उन्हें अपने संबंधों को मैत्री से इतर कोई नाम देना पड़ता है । ज्ञानरंजन ने 'फेंस के इधर और उधर' कहानी में लिखा है कि 'मै' के पड़ोसी की लड़की के द्वारा उसके पुरुष मित्रों का स्वागत 'मैं' के घरवालों को बुरा लगता है । वे अपने घर की बेटी पर नज़र रखते हैं–".....हमारे यहां तो भाभी पूजा के फूल भी पप्पी के साथ लेने निकलती हैं । वे बाहर भी डरती हैं और घर में भी । उन्हें डरा कर रखा जाता है । पप्पी पर भी तेज़ निगाह है । एक बार पड़ोसिन लड़की का पिता अपनी पत्नी के कंधे पर हाथ रखकर बात करने लगा, तो तुरंत पप्पी को किसी बहाने अंदर बुला लिया गया । फिर तो उस दृश्य ने हमारे घर में खलबली-सी मचा दी । कैसी निर्लज्जता है । धीर-धीरे हमारे घर के लोग पड़ोसी को काफ़ी ख़तरनाक समझने लगे हैं ।"[46]

मध्यवर्गीय समाज में लड़की का ज़ोर से हंसना बुरा माना जाता है । ज्ञानरंजन ने आलोच्य कहानी में इस ओर भी संकेत किया है-"लडकी हँसने से विवश हो गयी है । उसे सुध नहीं है कि उसका दुपट्टा केवल एक कंधे पर रह गया है । उसकी छातियों में मुक्त और अबोध हरकत दिखती है । बहुत हो गया । उसकी माँ को अब उसे इस बेसुधी पर झिड़कना चाहिए । पता नहीं वह कैसी है कि उसे बुरा नहीं लगता । शायद मेरे अलावा उनमें से किसी का भी ध्यान उस तरफ़ नहीं है ।"[47]

प्राय: मध्यवर्गीय परिवारों में संस्कार के नाम पर रूढ़ियों की गठरी ढोने का जिम्मा हमारे पुरुष प्रधान समाज ने स्त्री को दे रखा है। वह चाहे बात करने का सलीका हो या फिर कपड़े का चुनाव। मध्यवर्गीय परिवार अपनी बेटियों को परंपरागत वस्त्र में देखकर हर्षित होते हैं। ज्ञानरंजन की अनुभवी आंखों से यह सच और इसका परिणाम छिपा नहीं रह सका है–"उसे याद आया, जब वह यूनिवर्सिटी में पढ़ता था तो एक तांगे में आने वाली सभी मुसलमान लड़कियाँ अपने बुरक़े कंपनी गार्डेन की किसी हेज़ में छुपा दिया करतीं या कोचवान को सुपुर्द कर देती थीं जिसे उन्होंने लिया होता था। फिर बेपर्द होकर यूनिवर्सिटी आती थीं। लौटते समय बाज़ारों से बुरक़ा पहनकर गुज़रतीं और अपने घरवालों की पवित्र लड़कियाँ हो जाती थीं।"[48]

मध्यवर्गीय परिवारों के संस्कारों के मूल में सामंतवादी चेतना होती है। मध्यवर्गीय परिवारों में युवा लड़के एवं लड़कियाँ खुलकर बात भी नहीं कर सकते हैं। उन दोनों में संस्कार के नाम पर लगायी गयी पाबंदी से एक-दूसरे के लिए और अधिक जिज्ञासाएँ पनपती हैं, जो शांत न हो पाने के कारण कुंठा का रूप ले लेती हैं। 'चुप्पियाँ' कहानी का साक्ष्य देकर इस बात को समझा एवं समझाया जा सकता है–"वह मिन्नो से दो-चार आवश्यक व्यवहारिक शब्दों से अधिक कुछ बोल नहीं सकता है। केवल सोच सकता है जितना भी चाहे। वह जानता है कि इस सोचने के अलावा मिन्नो से उसका कोई संबंध नहीं है। और न हो सकता है।"[49]

4.6 संस्कृति का मध्यवर्गीय मुहावरा :

मध्यवर्ग को अपनी परंपरागत संस्कृति से कुछ अधिक ही प्रेम होता है। यह उसका अतीत को देखने का 'नॉस्टॉल्जिक विज़न' है। आधुनिक शिक्षा की रोशनी

में संस्कृति के नाम पर थोपी जा रही त्याज्य रूढ़ियाँ युवा पीढ़ी देख रही है, उनका खोखलापन समझ रही है फिर भी उनके प्रति उसके मन में कहीं कमजोरी है।

मध्यवर्ग आचार तथा लोक व्यवहार के प्रति आस्थावान होता है। वह कठोरता से अपनी रीतियों का पालन करता है, भले ही आज वे बेमतलब लगें। 'फेंस के इधर और उधर' कहानी से इस स्थिति को आसानी से समझा जा सकता है। इस कहानी में 'मैं' के पड़ोस में रहने वाली लड़की जब हठात् विवाह कर लेती है तब 'मैं' के परिवार में हलचल मच जाती है–"अम्मा मुझसे लड़की के न रोने पर आश्चर्य प्रकट कर रही हैं। उनके अनुसार यह पढ़-लिख जाने के कारण एक कठोर लड़की है, जिसे अपने माँ-बाप से सच्ची मोह ममता नहीं हैं। .....सबसे अधिक तोबा दादी को है। वे अकेले में ही बड़बड़ा रही हैं। उन्हें यह ब्याह-शादी बिलकुल समझ नहीं आई। न रोशन चौकी, न धूम-धड़ाका न तर पकवान। ऐसी कंजूसी किस काम की। और फिर ऐसे मौके पर पड़ोसी को न पूछना, वाह रे इंसानियत ! राम-राम।"[50]

मध्यवर्गीय परिवारों में लड़की को शर्म के पर्दे में देखकर लोग खुश होते हैं भले ही वह शर्म झूठी हो, दिखावटी हो। 'दिलचस्पी' कहानी में कथानायक कुछ ऐसी ही स्थितियों से स्वयं को घिरा पाता है–"उसने पहले तो यह सोचा, वंदना कच्ची है इसलिए शरमाई नहीं। फिर सोचने लगा, भला लगता है कि लड़कियां आजकल उठकर कम जाती हैं, अब तो बंगाली फ़िल्मों में भी अपनी शादी की बात सुनकर वे भाग नहीं जातीं।"[51]

मध्यवर्गीय परिवारों की स्थिति बड़ी विचित्र होती है। वहाँ पुरानी पीढ़ी

प्राचीन मूल्यों की समर्थक होती है एवं नई पीढ़ी का आग्रह आधुनिक मूल्यों के प्रति होता है । यहाँ यह समस्या स्त्रियों में और अधिक है । पुरुष एवं स्त्री दोनों ही आज शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं फिर भी मध्यवर्गीय नारी संस्कारों के बंधन में इस व्यवस्था में कुछ अधिक ही जकड़ी हुई है । उसका मन रूढ़ि तथा परंपरागत संस्कारों से मुक्त नहीं हैं । यह स्थिति रहन-सहन एवं पहनावे में भी देखी जा सकती है । ज्ञानरंजन ने 'फेंस के इधर और उधर' कहानी में आधुनिकता एवं परंपरा का द्वंद्व वस्त्रों के माध्यम से भी दिखलाने का प्रयास किया है–"मैं ही क्यों,पप्पी भी तो अक्सर कौतूहल से भरी, उस लड़की के कुरते के कपड़े की तारीफ़ करती रहती है ।"[52] पप्पी चाह कर भी पड़ोस की उस लड़की जैसे कपड़े नहीं पहन सकती । यहां हम देख सकते हैं कि आधुनिकता इस वर्ग को ठीक लगती है पर यह अपनी रूढ़ियों–परंपराओं की खोल से बाहर निकलना नहीं चाहता है ।

अंधविश्वास मध्यवर्ग की संकीर्णताओं को और बढ़ा देता है । मध्यवर्गीय लोग कुछ अधिक ही अंधविश्वासी होते हैं । यह शिक्षित लोगों में भी उसी तरह से दिखाई पड़ता है जैसे अशिक्षितों में व्याप्त होता है । 'अमरूद का पेड़' कहानी में ज्ञानरंजन ने इस तथ्य की ओर भी संकेत किया है–"बाबू कन्हैयालाल की बूढ़ी पत्नी ने एक दिन टोका कि पश्चिम की तरफ़ अगर मकान का मुखड़ा हो और सामने ही अमरूद का पेड़ तो 'राम-राम बड़ा अशुभ होता है' ।"[53] कुछ-कुछ ऐसी ही स्थिति खड़ी होती है 'फेंस के इधर और उधर' में जब विवाह के बाद विदाई के वक्त पड़ोसी की लड़की रोती नहीं और हँसते हुए ससुराल जा रही होती है–"पहले ज़माने में लड़कियाँ गाँव की हद तक रोती थीं । जो नहीं रोतीं, उन्हें मारकर रुलाया जाता था, नहीं तो, उनका ससुराल में कभी सुखी जीवन नहीं रह सकता था । पिता को बड़ा दर्द हुआ कि आज वैसा नहीं रह गया

है । पुराना ज़माना जा रहा है और 'आदमी का दिल मशीन हो गया है, मशीन' । ऐसे समय हमेशा पिता का स्वर तेज़ हो जाता है, और आँखों में कलयुग के खंडहर नाचने लगते हैं । "[54] अपने अंधविश्वास को तर्क का आधार देकर प्रतिष्ठित करने की मध्यवर्गीय प्रकृत्ति पर इससे कठोर आघात और क्या होगा ।

मध्यवर्गीय परिवार पर **पाश्चात्य संस्कृति का बड़ा गहरा असर** आज दिखाई पड़ता है । बोलते समय आज इस वर्ग के बहुत से लोग अंग्रेजी के शब्द, वाक्य या वाक्यांशों का प्रयोग करते हैं । ऐसा करते हुए वे अपने शिक्षित होने का पता देना चाहते हैं, इसके साथ ही स्वयं को आधुनिक भी जतला देना चाहते हैं । आज अंग्रेजी ज्ञान 'स्टेटस-सिंबल' के तौर पर देखा जाता है । परंतु इसकी फूहड़ता का ग़ज़ब का मजाक उड़ाते हैं ज्ञानरंजन । 'दिलचस्पी' कहानी का नायक–"सोचने लगा, अधिक-से-अधिक यह होगा कि कुछ समय बाद वह एक नई और सरल भाषा बोलने लगेगी, आधुनिकाओं की भाषा.... 'देखिएजी, आप कुछ नहीं देखते, बेबी ने बाथरूम कर दिया है ! बताइये, मैं क्या करूं, आया भी तो नहीं है' ।"[55]

मध्यवर्गीय परिवारों में **दिखावे की प्रवृत्ति** विशेषत: लक्षित की जा सकती है । ज्ञानरंजन ने 'शेष होते हुए' कहानी में दिखाया भी है इस स्थिति को–"भाभी का कमरा गुदड़ी बाज़ार है, लेकिन दैनिक उपयोग में आनेवाली सबसे नयी, सुंदर और फ़ैशनेबुल चीज़ें उन्हीं के कमरे में हैं । प्रसाधन सामग्रियों की जैसी सुगंध भाभी के कमरे में व्याप्त रहती है, वैसी कहीं नहीं होती ।"[56] एक अन्य कहानी 'फेंस के इधर और उधर' में पड़ोस में शादी के अवसर पर खर्च न किए जाने पर मध्यवित्त परिवार की दादी को बहुत बुरा लगता है ।

मध्यवर्ग की एक विशेषता यह है कि वह **आधुनिकता का झूठा दिखावा** करता है, परंतु मौका पड़ने पर इस वर्ग के सामंती संस्कार पुन: जीवित हो जाते

हैं । ज्ञानरंजन की एक कहानी 'सीमाएँ' में वे यह दिखाते हैं कि 'मैं' के ऊपर उसके दोस्त के द्वारा किस प्रकार से आरोप लगाए जाते हैं । 'मैं' एवं सविता, जो उसके दोस्त की बहिन है, के प्रेम के संबंध में उसके दोस्त का कहना है–"वह लगभग रो उठा, मैं तुम्हें सच्चा दोस्त मानता था । तुमने सवी (सविता) पर ही डोरे डालने शुरू कर दिए । मेरे ही घर में आग लगाने की कोशिश की । तुझे दुनिया में कोई मिला ही नहीं ।"[57]

मध्यवर्ग की कतिपय संकीर्णताएँ होती हैं । इन्हीं संकीर्णताओं में से एक है मध्यवर्गीय तुलनात्मक प्रवृत्ति । ज्ञानरंजन इस प्रवृत्ति पर 'फेंस के इधर और उधर' कहानी में विचार करते हैं । इस तुलनात्मक वृत्ति में मध्यवर्ग दूसरों को श्रेष्ठ समझकर उनकी तरह का जीवन जीने की चाह रखता है–"मन पड़ोसी के घर में मंडराने लगता है । युवा और असंपृक्त लड़की । खुशमिजाज़ और बेखौफ़ माता-पिता । काश मैं उनके घर में ही पैदा हुआ होता ! मन यूँ उड़ता है ।"[58]

दूसरों में कमियाँ खोजना मध्यवर्ग की एक ग़जब की आदत है । वह अपनी कमियों को दूर करने की अपेक्षा दूसरों की ज़िंदगी में ताक-झांक करके उनमें दोष मढ़ देता है एवं स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करता है । इस वर्ग के इस खोखले चरित्र पर प्रहार करते हुए अपनी कहानी 'फेंस के इधर और उधर' में ज्ञानरंजन लिखते हैं– "अब हमारे यहां जबरन पड़ोसी के प्रति रुचि लेकर अरुचि उगली जाने लगी जबकि हमारे लिए उनका होना बिलकुल न होने के बराबर है । धीरे-धीरे हमारे घर में पड़ोसी को दुनिया की तमाम बुराइयों का संदर्भ बना लिया गया है ।"[59]

किसी व्यक्ति को मजाकिया लहजे में नया नाम देना मध्यवर्ग की एक अन्य आदत होती है ; दूसरों का मजाक बनाना मध्यवर्ग की आदत होती है । ज्ञानरंजन 'यात्रा' कहानी में 'मैं' के द्वारा कहलवाते हैं–"उस बच्चे की याद आई जिसे मैं 'पेंगा पीला' कहता हूँ और वह बच्चा उसे गुरु । यद्यपि अपने बच्चे का कोई मजाकिया नाम भी नहीं पड़ने दूंगा ।"[60]

पुराने और नए मूल्यों में किसे स्वीकार किया जाए एवं किसे त्याग दिया जाए, इस बात को लेकर मध्यवर्गीय समाज में संशयग्रस्त मानसिकता मिलती है । ज्ञानरंजन की 'यात्रा' कहानी में मृत्यु के बाद की विभिन्न प्रक्रियाओं के संदर्भ में कहानी के 'मैं' का यह सोचना यही दिखलाता है–"समोसे खा लेने के बाद अंदर शारीरिक शांति-सी छा गई । मुझे शुभा हुआ, क्या मेरी ज़िंदगी का ये सबसे बत्तमीज दिन तो नहीं है । मेरा पिछला जीवन काफ़ी सहमा हुआ और सुसंस्कृत रहा है, फिर यह चांडालपन कैसा । जिस व्यक्ति का मृतात्मा से लंबा दिली रिश्ता रहा हो उसके लिए ऐसे समय में समोसा भकोसना या उसकी इच्छा मात्र ही करना चांडालपना नहीं तो और क्या है । लेकिन मेरा दिल घूम-फिर कर मुझसे यही कहता रहा कि भले तुम समोसे खा रहे हो लेकिन तुम्हारे अंदर प्रेम और परंपरा की समाप्ति नहीं हुई ।"[61] न चाहते हुए भी झूठे मूल्यों के ढोने का यह नाटक कितना कष्टकर है ।

मध्यवर्ग की बहुत-सी चीज़ें बनावटी होती हैं । यहां तक कि कभी-कभी तो उसके सुख-दुःख भी । वह जैसा दिखता है, वैसा होता नहीं । ज्ञानरंजन की 'यात्रा' कहानी इसका प्रमाण प्रस्तुत करती है, जहाँ मृत्यु पर व्यक्ति का क्लांत दुखी दिखना जरूरी है–"मुझे चिंता हुई, पहुँचते-पहुँचते इतना क्लांत न हो जाऊँ कि शोक का स्वाभाविक चिह्न ही चेहरे से मिट जाए । मुझे मालूम है, ये

चिह्न ही असली कसौटियाँ होते हैं और ऊपर पड़े दु:ख को बनाए रखने का एक ही तरीका है कि मैं अपने ऊपर चीज़ों, लोगों और वातावरण का असर न होने दूँ।"[62]

4.6.1 अर्थप्रधान संस्कृति एवं ज्ञानरंजन की कहानियाँ :

आज नई संस्कृति का आविर्भाव हो चुका है। यह नई संस्कृति है अर्थप्रधान संस्कृति। इसमें अर्थ ही परिवार-समाज में महत्त्व की कसौटी बन बैठा है। मध्यवित्त परिवारों में कमानेवाले का ही महत्व होता है और जो अर्थोत्पादक नहीं होता वह महत्त्वहीन हो जाता है। ज्ञानरंजन कहते हैं–"मध्यवर्ग पूरी तरह नक्काल संस्कृति, आर्थिक उपार्जन और, बाज़ार-हाट के मनसूबों से भरा हुआ है।"[63] ज्ञानरंजन की 'शेष होते हुए' कहानी में पिता इसी कारण महत्त्वहीन हो चुके हैं क्योंकि अब वे अर्थोत्पादक नहीं रहे। 'क्षणजीवी' कहानी में पिता का महत्त्व बेटे ('मैं') के लिए बस इतना ही है कि वह उसे मनी आर्डर करता है–"मुझे अपने बूढ़े बाप की उम्मीद पर बड़ा क्रोध आ रहा है। भगवान यह बुड्ढा मर ही जाए। ...मुझे लगा कि तीस रुपयों का मनी आर्डर मेरे भय के फंदे पर जीभ उगले हुए मुर्दा चेहरे की तरह लटक आया है।"[64]

4.7 अर्थचेतना का संदर्भ एवं ज्ञानरंजन की कहानियाँ :

आधुनिक समाज अर्थचेतस् है। सांप्रतिक समय में अर्थ जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करता है। आज समाज में जिसके पास अर्थ-शक्ति है, वही शक्तिशाली है। मध्यवर्ग आर्थिक दृष्टि से मध्यवर्तिनी स्थिति में होता है। निम्न मध्यवर्ग की स्थिति आर्थिक दृष्टि से चिंताजनक होती है। यह वर्ग इसीलिए संघर्षरत रहता है। मध्यवर्गीय परिवारों में अर्थगत वैषम्य के कारण ही कन्या का विवाह एक कष्टकर मामला होता है क्योंकि उसमें ढेर सारे सामान एवं रुपये

दहेज में देने होते हैं । इसलिए विवाहादि अनुष्ठानों में घर की अर्थ व्यवस्था चरमरा जाती है ।

अर्थ पक्ष मध्यवर्ग में बहुत महत्त्वपूर्ण होता है । कभी-कभी यह वर्ग बाध्य होकर अपनी परंपरा की गठरी भी इसके लिए पटक देता है । 'क्षणजीवी' कहानी का नायक मध्यवर्गीय प्रतिष्ठा के प्रतिकूल बाध्यतामूलक स्थितियों में सोचता है–"फिर मेरा बाप आख़िरकार मेरे लिए क्या करे जब कि एक पहाड़-सी उम्र की लड़की, शादी के एक कभी न झुकने वाले प्रश्नवाचक की तरह अड़ी हुई है । लेकिन मैं सोचता हूँ कि मेरी बहन किसी से प्रेम करके अपनी शादी की सस्ती मनमाफ़िक व्यवस्था क्यों नहीं कर लेती ? रानी बिलकुल कलाहीन है । उस कमबख़्त का किसी से प्रेम नहीं है । पिता के संघर्ष को वह मूर्ख थोड़ा भी नहीं समझती ।"[65]

मध्यवर्गीय परिवारों का व्यक्ति अपने रहन-सहन को पैसे की आमद के तर्ज पर ढाल लेता है । 'क्षणजीवी' कहानी में 'मैं' भी ऐसा ही करता है–"बाद में मैं एक साल फ़ेल होने के बाद दूसरे साल थर्ड डिवीज़न में 'ग्रैजुएट' हो गया । एक सस्ती कोठरी के वास्ते उस कमरे को छोड़ना पड़ा क्योंकि तीस रुपए की मासिक पूँजी में आठ रुपए का कमरा महँगा था ।"[66]

मध्यवर्ग के वे छात्र जो घर से दूर रहते हैं या जिन्हें नौकरी की तलाश रहती है, वे घर से आने वाले मनी आर्डर की प्रतीक्षा करते रहते हैं–"मैं प्रतीक्षा करते-करते आज हताश हो गया हूँ, क्योंकि हफ़्ते भर पहले जिसे आ जाना चाहिए था, एक छोटी-सी रकम का वह मनी आर्डर अब तक नहीं आया ।"[67]

इस वर्ग के लोगों के यहाँ तंगी का यह हाल होता है कि वे मौके-बेमौके पड़ने वाले आयोजनों एवं मुलाकातों पर अपने परिचितों को भेंट देने के पहले दस बार सोचा करते हैं और भेंट न दे सकने की सूरत में अपने तर्क गढ़ लेते हैं–"नहीं कभी नहीं क्योंकि बच्ची बड़ी पिचपिची-सी है और बेहुदी सिलाई की साधारण-सी फ्रॉक पहने है। शायद मेरे मन ने रुपए की संभावना को असंभव माना।"[68] यहां मध्यवर्गीय परिवार में बाल कुपोषण तो देखा जा ही सकता है, अर्थाभाव में सामाजिकता से कटना भी लक्षित करने योग्य है।

दूसरों की आर्थिक उन्नति भी इस वर्ग को अप्रिय लगती है। यह वर्ग दूसरों का सुख हजम नहीं कर पाता है। ऐसे में इस वर्ग के लोग दूसरों पर भ्रष्टाचारी होने का लेबल लगा देते हैं एवं अपनी असमर्थता को ईमानदारी का सुंदर जामा पहना देते हैं–"मुझे विश्वास हुआ कि शांती के पति फ़टीचर ओवरसियर की जेबें खूब रुपयों से भरी होंगी और मैं कुछ रुपयों की प्रतीक्षा में सड़क पर खून जलाता भटक रहा हूँ–लावारिस।"[69]

अपनी आर्थिक अक्षमता के लिए यह वर्ग व्यवस्था को भी दोषी मानता है एवं उसके भ्रष्टाचार को कोसता है। उसका यह नपुंसक क्रोध ज्ञानरंजन से छिपा नहीं रह सका है–"मैं यह मानने को विवश होता हूं कि बाबू की पेंशन ही अभी नहीं आई होगी। सरकारी दफ़्तरों में अजीब भर्रा मचा हुआ है। शांती के खूसट पति सरीखे लोग ही तो सरकार में घुसे हुए हैं मेरे दांतों में एक शिथिल भिंचाव आया।"[70]

मध्यवर्गीय परिवारों में पिता अपने बेटे को अतिशीघ्र व्यवस्था में फिट कर देना या होते देखना चाहता है। वह उसे नौकरी में देखना चाहता है। यही

उसकी और उसके परिवार की महत्त्वाकांक्षा का गणित होता है। ऐसे में पुत्र पर पिता के सपने को पूरा करने का बोझ आता है एवं उसमें असफल होने पर वह तरह-तरह के कुविचारों से घिर जाता है–"मैंने अभी कई बार उधर देखा है जबकि थोड़ी देर पहले मैंने यह भी चाहा था कि दनादन ढेर सारी रायफ़लें छूट जाएं, छूटती रहें और तब तक न बंद हों जब तक कि मेरे बूढ़े रिटायर्ड बाप के काँपते हाथों से किया गया वह मनी आर्डर मुझे न मिल जाए जो वह सौ रुपए की ग़रीब पेंशन में से मुझे एक क्लर्क होने की उम्मीद में भेजता रहता है।"[71]

मध्यवर्गीय परिवारों में एक नौकरी का अर्थ होता है एक परिवार का बच पाना, अस्तित्व को बनाए रख पाने में सफल हो पाना। नौकरी से व्यक्ति का सम्मान भी बढ़ता है एवं सामाजिक हैसियत भी। इसलिए हर मध्यवर्गीय युवक अतिशीघ्र कहीं नौकरी पा लेना चाहता है परंतु योग्य होने पर भी वह हरबार सफल नहीं हो पाता है। विज्ञान के प्रचार-प्रसार में मशीनों ने कई लोगों को बेरोजगार बना दिया। इसके अलावा भाई-भतीजावाद एवं भ्रष्टाचार ने भी कोई कोर-कसर बेरोजगारी को फैलाने में न छोड़ी। एक समय के बाद साक्षात्कार में असफल प्रत्याशी जो निम्न मध्यवर्ग से होता है, मोहभंग का शिकार हो जाता है। वह उदासीन-सा हो जाता है- "चार साल के अंदर ही शांती को एक परिवार में देख मुझे लगा कि मेरी उम्र काफ़ी हो गई है, और बहुत-सी नौकरियाँ बिना मुझे शह दिए तेज़ी से छूट-छूट भागती जा रही हैं।"[72] आत्मविश्वास की हत्या होने के बाद की नायक की यह स्थिति बड़ी ही दारुण है। वस्तुत: नौकरी इस वर्ग के लोगों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है।

परिवारों के टूटने का आज एक अहं कारण अर्थ है। सभी लोगों को सारी सुख-सुविधाएं प्रदान कर पाना आज कठिन हो गया है। व्यक्ति आज पहले

अपने लिए सोचता है ; दूसरों के लिए त्याग करना वर्त्तमान समय में कम ही देखा जाता है। 'शेष होते हुए' कहानी में "मझले को कुछ रुपयों की जरूरत पड़ गई, उसने माँ से माँगे। माँ ने भैया से कहा। भैया का बड़प्पन दहाड़ने लगा "क्या करेगा वह इतने रुपये ? इसी तरह लोगों की आदतें ख़राब होती जा रही हैं।".....माँ अपना-सा मुँह लेकर वापस आ गई। मझला सोचने लगा कि उसने नाहक कहा। शायद लोगों को अपने संसार पर इतना अधिक ख़तरा नज़र आने लगा है। ग्लानि में डूबा रहा मझला।"[73] "घर अंदर-अंदर खंडित हो रहा है।"[74] क्योंकि "घर में सात लोग हैं, और सात बार टेबल पर खाना रखा जाता है। मझला भी इस व्यवस्था में आसानी से शामिल हो जाता है, क्योंकि किसी को भी एक-दूसरे का सामना करना सरल नहीं लगता। कोई गंभीर दुर्घटना ही शायद लोगों को एक स्थान पर एकत्र कर सकती है।"[75]

मध्यवर्गीय व्यक्ति अपने बजट का बड़ा ही ध्यान रखता है। वह अपनी सीमित आमद में सारे ख़र्चों का खाका तैयार कर लेता है और उसी के अनुसार ख़र्च करता है–"मैंने जेब टटोली और सिक्कों तथा काग़ज़ करेन्सी को अंदर ही अंदर गिना। बहुत ही कम पैसे लेकर मैं निकला। मैं बजट के मुताबिक पैसे लेकर निकला था। मैंने अपने तरीके की निंदा की।"[76]

अर्थाभाव के कारण ही मध्यवर्गीय परिवार की निर्मिति 'शेष होते हुए' का मझला विवाह नहीं कर पाता। कुछ-कुछ यही स्थिति 'क्षणजीवी' के कथानायक की भी है। अर्थाभाव मध्यवर्ग के लिए एक बड़ी समस्या है। कभी-कभी यह व्यक्ति के आत्म-सम्मान को पंगु बना देता है। ज्ञानरंजन की अनुभव कहानी का गणेश इन्हीं स्थितियों में स्वयं को बंदी पाता है–"कॉफ़ी पीने के बाद वह तब तक अपने दाहिने हाथ को कुरते की जेब पर रगड़ता रहा, जब तक कि मैंने पैसे

नहीं दे दिए । फिर वह हँस पड़ा जो कि हँसी से अधिक एक कराह थी ।"[77] कुछ-कुछ ऐसा महंगाई के कारण भी है क्योंकि सिर्फ़ कॉफ़ी भी बड़ी महंगी पड़ रही है । इस स्थिति से निम्न मध्यवर्ग की औकात का सहज ही पता लगाया जा सकता है ।

कभी-कभी बेरोजगारी एवं अर्थाभाव व्यक्ति को इतना तोड़ देते हैं कि वह **आत्महत्या** जैसा अपराध कर बैठता है । 'संबंध' कहानी में कथानायक का छोटा भाई इन्हीं स्थितियों से बाध्य होकर आत्महत्या करने गया है । "वह कई अंगूठियाँ पहनता है । ....और कभी न लौटने, आत्महत्या कर लेने की बात कह कर निकल गया है ।"[78] असफलताओं ने उसे अंधविश्वासी बना दिया है, वह कई अंगूठियाँ-पत्थर पहनने लगा है कि शायद उनसे कुछ बात बने ।

मध्यवर्गीय घरों की यह स्थिति होती है कि वहां कमानेवाले का महत्त्व होता है एवं औरों को उपेक्षित रखा जाता है । 'शेष होते हुए' कहानी में पिता की स्थिति कुछ-कुछ इसीलिए उपेक्षित-सी है । मध्यवर्गीय घरों की हालत पर ज्ञानरंजन लिखते हैं–"लटक आयी टाट की सीलिंग से दिन भर मिट्टी झड़ती रहती है । घास के तिनके, छिपकलियों, गौरैयों के अंडे और कभी-कभी पूरा का पूरा घोंसला ही रोशनदान से गुज़रने वाली तेज़ हवा वहाँ गिरा जाती है । दो हमेशा बिछी रहने वाली झिलगी चारपाइयाँ हैं, जिन पर ज़्यों-त्यों दीवार की बेतरतीब खूटियों के सहारे सुतलियों से मच्छरदानियाँ टाँग दी गई हैं । दिन-भर इन सुतलियों पर मक्खियों की क़तारें आराम करती होती हैं ।"[79]

मध्यवर्गीय घर उपभोक्तावाद के इस जमाने में **प्राचीन एवं नवीन जीवनशैली के बीच चुनाव की समस्या** से भी गुज़र रहे हैं । 'शेष होते हुए' कहानी में "तारा जिस दिन यूनिवर्सिटी या किसी सहेली के घर से विदेशी फूलों का बगीचा देखकर आती है, उस दिन अम्मा को सुनाने की गरज से तुनकती

सकत और कुंठत हात रहत ह– "करन न उत्तरात्तर तज़ हान वाल धाम स स्वर

रहती है–"पोदीना बो रखा है । इतनी ज़मीन पड़ी है, यह नहीं कि एक माली रखकर बगीचा तैयार करवाएँ, कुछ अच्छा लगे । पता नहीं शुद्ध घी खाकर क्या करेंगे, उससे तो लोग और बीमार रहते हैं ।"[80]

4.8 कामभावना का संदर्भ एवं ज्ञानरंजन की कहानियाँ :

मानव मन काम, अहं, भय एवं हीनग्रंथि से परिचालित होता है । व्यक्ति की गतिविधियों का भी ये ही आधार हैं । काम जीवन का अभिन्नतम अंश है । इसकी तृप्ति से व्यक्ति का विकास होता है एवं इसका दमन करने से वह मनोग्रंथियों का शिकार हो जाता है । व्यक्ति नैतिकता का पालन करने के कारण विवाहेतर काम-संबंध स्थापित नहीं करता है । मध्यवर्गीय समाज में तो यौन वर्जनाओं का संजाल ही दिखाई पड़ता है । मध्यवर्ग में विवाह ही यौन संबंध-स्थापना का माध्यम होता है ।

मध्यवर्गीय समाज का ढांचा आज भी कुछ-कुछ मूल्यों के धरातल पर, विशेषकर **यौनिकता के संदर्भ में सामंतवादी ही है** । यहां विवाहेतर संबंध ग़लत माने गये हैं । इस समाज में यौन वर्जनाएं इतनी ज़्यादा होती हैं कि स्त्री-पुरुष को आपस में बात करने की भी छूट नहीं होती है । वे मित्र तो हो ही नहीं सकते क्योंकि यह समाज उनमें (स्त्री-पुरुष के) एक ही तरह के रिश्ते को देखता है । ज्ञानरंजन ने इस स्थिति में 'चुप्पियाँ' कहानी में करन एवं मिन्नो को दिखाया है । करन मिन्नो के बहुत क़रीब होकर भी उससे बहुत दूर है । उनमें एक दूसरे के लिए कई जिज्ञासाएँ हैं परंतु वे चाहकर भी संवाद-सूत्र स्थापित नहीं कर सकते और कुंठित होते रहते हैं– "करन ने उत्तरोत्तर तेज़ होने वाले धीमे से स्वर में कई बार मिन्नो को संबोधित किया । और शायद इसी धीमे से तेज़ होने वाले स्वर में मिन्नो ने भी हूँ-हूँ किया था । पर करन बोल नहीं पाया । मिन्नो को

चुप्पी के कुछ क्षणों के बाद लौटना पड़ा । किसी सैनिक की महान् मृत्यु के बाद रेसपेक्ट मार्च की-सी चाल में वह वापिस हो रही थी । एक-एक क़दम उठने की लंबी अवधि में ऐसा लगता जैसे मिन्नो करन को मुँह खोलने की स्वीकृति और अवसर दे रही है ।"[81] इस संदर्भ में आनंद प्रकाश कहते हैं- "युवक अंदर ही अंदर मिन्नो की प्रत्येक हरकत का सूक्ष्म ध्यान रखता है यद्यपि ऊपर से निरंतर बेलाग और अलग-थलग दिखते रहना चाहता है । उधर मिन्नो को भी किंचित उत्सुक रूप में वर्णित किया गयां है यद्यपि उसका बचपना तथा सीधापन युवक के लिए पर्याप्त रहस्यमय बना रहता है ।.....कहानी का अंत भी पूर्व परिचित-सा लगता है जब युवक मिन्नो से बिना कुछ कहे चुपचाप गांव से विदा लेकर शहर लौट आता है ।"[82]

ज्ञानरंजन के कलाकार की विकास-यात्रा के साथ-साथ उनकी दृष्टि में भी उनकी कहानियाँ फर्क़ उपस्थित करती हैं । ज्ञानरंजन की कहानियों का प्रारंभिक रूप कहीं-क़हीं कैशोर्य सुलभ चांचल्य से प्रेरित है । उनकी कहानियाँ काम भावनाओं का चित्र भी उपस्थित करती हैं । ये कहानियाँ रिश्तों में यौन क्रियाओं का महत्त्व स्थापित करती हैं । विद्याधर शुक्ल इसलिए कहते हैं कि "ज्ञानरंजन की कहानियाँ सार्त्र से अनुप्राणित हैं, कहानियाँ क्या हैं सेक्स की रेखाएँ है, पश्चिमी परम्परा के आधार पर रचित यौन संग्राम हैं ।"[83]

ज्ञानरंजन की 'हास्यरस' कहानी में उनकी काम विषयक अवधारणा स्पष्टत: सामने आई है । इस कहानी में पति-पत्नी हठात् काम से परिचालित होकर नाना गतिविधियों में लिप्त' नज़र आते हैं । मध्यवर्गीय व्यक्ति के रूप में नायक का विवाहोपरांत अपनी पत्नी की बहिन के बारे में यह सोचना उसकी कामभावना को ही दर्शाता है–" यकीनन वह इससे बेहतर है, मुझे उसको ही

पाना चाहिए था ।"[84] 'दांपत्य' कहानी में तो मध्यवर्गीय यौन चरित्र और अधिक उभरकर सामने आता है, जहां ऊब भरी यौन दिनचर्या से परेशान नायक अपनी पत्नी को घर पर छोड़कर, उससे बचते हुए जल्दी ही घर से बाहर निकल जाता है । इस कहानी से यौन गतिविधि का एक चित्र दृष्टव्य है–"गले में बाँह डालकर उसने थोड़ा ज़बरदस्ती की और थोड़ी देर तक ओठों को जहाँ कहीं जगह मिली रगड़ती रही ।"[85]

प्रेमी-प्रेमिका संबंधों के यौन धरातल पर भी ज्ञानरंजन की दृष्टि साफ़ है । प्रेमिका की आधुनिक इमेज का काल्पनिक चित्र ज्ञानरंजन कुछ इस तरह खींचते हैं–"वह अपने 'अंगों' को खूबसूरती से छुपाती थी और खूबसूरती से ही दिखाना भी जानती थी ।"[86]

पति एवं पत्नी की उम्र का बड़ा फर्क़ कितना मारक होता है, इस पर ज्ञानरंजन की 'छलांग' कहानी आलोकपात करती है । इस कहानी के संदर्भ में डॉ. यशपाल वैद लिखते हैं–"इस कहानी में युवावस्था की उस दमित सेक्स की मांग का चित्रण है जिसे यदि दबाया न जाए तो सोच और विचार विमर्श के स्तर पर तो यह दमित इच्छा एक ग्रंथि बनकर किसी नारी या पुरुष को भी भोगने पर उतारू हो सकती है । मनोवैज्ञानिक यथार्थ का प्रकृत रूप कहानी में है । श्रीमती ज्वेल और नायक के संबंध में काम (यौन) क्रियाओं की गुदगुदी है–कहानी में कुरूपता, वीभत्सता और शारीरिकता, मांसलता-सब कुछ है, लेकिन कहानी अश्लीलता का प्रभाव नहीं छोड़ती ।"[87] इसी कहानी से यह अंश दर्शनीय है–"मैंने पाया, इसके बाद मेरे मुंह-नाक उसके मुलायम पेट में धंस गए हैं । खूब अच्छा लगा, पेटीकोट से आती पेशाब की मरती बदबू अच्छी नहीं लगी ।"[88] यहाँ साफ़-साफ़ देखा जा सकता है कि श्रीमती ज्वेल अपनी उम्र से छोटे युवा लड़कों

को फांस रही हैं एवं नायक सोच और भोग के अंतर्द्वंद्व में उससे अछूता ही रह गया है । यहां कैशोर्य मनोग्रंथियों, यौन भावनाओं को लेखक ने बेलाग-लपेट यौनिकता के धरातल से दिखाया है, जहां उसकी दृष्टि रुग्ण प्रतीत नहीं होती है ।

'घंटा' कहानी में 'बार-गर्ल' के चालूपने पर बुद्धिजीवी 'मैं' उसे हिकारत भरी दृष्टि से देखते हुए सोचता है–"हरमज़दगी उसकी आँखों और स्तनों पर देखी जा सकती थी । गाते हुए वह अक्सर, कंधों के ज़ोर से स्तनों को परिन्दों की तरह हॉल में उचकाने का खेल करती थी ।"[89] यहां 'मैं' ने इस उच्चवर्गीय बार की असलियत को समझ लिया है और उस गायक लड़की की आमंत्रण देती बाज़ारू गतिविधियों को भी जान लिया है । **संभ्रांत वर्ग की यौनिकता** का यह सामाजिक चेहरा उसे बड़ा गंदा लगता है । कुछ ऐसी ही स्थिति 'अनुभव' कहानी के कथानायक 'मैं', जो एक बुद्धिजीवी है, की शेरोंवाले क्लब के सपत्नीक ब्लू फ़िल्म देखने वाले कार्यक्रम में होती है । उसे ब्लू फ़िल्म को देखने का मध्यवर्गीय चाव है पर वह बाहर से सबको उदासीन दिखलाई पड़ने की चेष्टा करता है । संभ्रांत वर्ग के इस गंदे चेहरे पर ज्ञानरंजन इस कहानी में, जहां मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का आलोच्य पाखंड भी है, लिखते हैं–"सात बजे हम गेस्ट हाउस में मिले । अंदर तैयारी हो रही थी । पता चला कि फ़िल्म का नाम है 'लव गेम फ़ाम कोपेनहेगन' । शेरोंवाले क्लब के बहुत से लोग यहाँ जुड़वाँ उपस्थित थे । सबसे अधिक उत्सुक और वाचाल अधेड़ लोग थे । पिता जैसे लोग भी आए थे । बड़ी ज़िदादिली थी । जवान और अधेड़ का मिलन आश्चर्यजनक था । उनमें कभी-कभार संवाद भी हो जाते थे ।"[90] यहां यह साफ़ तौर पर देखा जा सकता है कि 'मैं' अपने वर्गीय संस्कारों की वजह से थोड़ा संकोच कर रहा है, पर अन्य अभिजन स्त्री-पुरुषों के लिए यह 'रूटीन वर्क' जैसा है । इससे कुत्सित यौन दौर्बल्य का अभिजन चेहरा और क्या होगा ? स्त्री-पुरुष के गोपनीय व्यापार

का वहां कोई अर्थ ही जैसे नहीं रह गया है एवं हद तो तब हो जाती है जब श्रीमती नथानी कहती हैं–"स्वामी ('मैं' का संबोधन) फ़िलहाल आई कैन मैनेज माई आया। .....अपने तकलीफ़ के दिनों में जै (पति) के लिए मैं उसी से कहती हूँ। जै को चाहिए रोज। बाबा मैं तो उससे आजिज़ आ गई हूँ। .... स्वामी, आया इज़ ब्यूटीफूल टू।"[91] निम्नवर्गीय नारी का यह यौन शोषण एवं अभिजन समाज की यह विकृति, जिसे उसकी स्त्रियों ने भी सहजता से स्वीकार कर लिया है, सचमुच हमारे मध्यवर्गीय एवं उच्चवर्गीय समाजों पर नैतिकता के धरातल पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न उपस्थित करते हैं। सामूहिक सेक्स का यह गंदा चेहरा कहाँ लेकर जाएगा हमारे समाज को ?

'सीमाएँ', 'खलनायिका और बारूद के फूल' एवं 'फेंस के इधर और उधर' जैसी कहानियों ने भी यौन धरातल पर मध्यवर्गीय समाज के पाखंड एवं छद्म आधुनिकता पर आघात किया है। वस्तुत: ज्ञानरंजन सूक्ष्म दृष्टि से देखने वाले कहानीकार हैं, जिन्होंने मध्यवर्गीय यौनिकता का चित्रण मनोवैज्ञानिक धरातल पर किया है।

4.9 मध्यवर्गीय छद्म बौद्धिकता और ज्ञानरंजन की कहानियाँ :

ज्ञानरंजन की कहानियों के केन्द्र में है शिक्षित मध्यवर्ग। उन्होंने अपनी दूसरे दौर की कहानियों में बुद्धिजीवियों के मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त छद्म पर व्यंग्य किया है। मध्यवर्ग की स्थिति सचमुच उस 'घंटे' की तरह होती है, जो ज़मीन और आसमान के बीच झूलता रहता है, न ज़मीन का हो पाता है और न आसमान का।

ज्ञानरंजन की कहानियों में बुद्धिजीवियों के द्वारा अपने देश को प्रेम न कर

सकने की टुच्चई का मजाक बनाया गया है । ये लोग अवसरपरस्त है । 'घंटा' का कुंदन सरकार, 'बहिर्गमन' के मनोहर एवं सोमदत्त और 'अनुभव' का सतीश ये कुछ ऐसे चरित्र हैं, जो उपर्युक्त विशेषताओं से संयुक्त हैं । ये लोग शहर के 'भद्र स्थानों (?)' पर जाकर, जहां सब कुछ मखमली और विलासितापूर्ण है, साहित्य और आदर्श चबाते हैं और इसी क्रम में अपनी जन्मभूमि को कोसा करते हैं ।

नशे में डूबकर ये लोग आभिजात्यता के नाम पर अपनी यौन विकृतियों को मुक्ति का सुंदर जामा पहनाकर उसे उचित ठहराते हैं । 'घंटा' के कथानायक का 'पेट्रोला' से 'भद्रस्थान' के लिए बहिर्गमन होता है, 'बहिर्गमन' में मनोहर का अपने शहर, अपने देश से बहिर्गमन है, 'अनुभव' में सतीश का शेरोंवाले क्लब के भद्रस्थान के लिए बहिर्गमन हो जाता है । ये वे लोग हैं जो भारत में होकर भी भारत को नहीं जीते हैं । इन्हीं संदर्भों में सुरेन्द्र चौधरी का कथन है–"ज्ञान ने क्रांतिकारियों (?) के तथाकथित सांस्कृतिक व्यवहार से अपनी दूरी 'घंटा' में बेहतर ढंग से निर्णायक रूप में साबित की है । क्रांति के बौद्धिक चेहरों में ज्ञान ने जो कुछ ढूंढा, मुखौटा उतर जाने पर वह बार-बार कुछ और साबित हुआ ।"[92] इन कहानियों में बुर्जआ समाज का वह चेहरा भी सामने आता है कि कैसे और कितना वह व्यक्तिवादी स्वार्थों से प्रेरित है । मध्यवर्गीय व्यक्ति निजी महत्त्वाकांक्षा से गैर-सामाजिक हाने लगता है । वह मुक्ति की खोज में अर्थहीनता में सार्थकता की खोज करने लगता है । ऐसे में वह अपने देश, समाज और अपनी जातीयता को गाली देने लगता है ।

ज्ञानरंजन की इन्हीं कहानियों में मध्यवर्ग का 'इलीट क्लास' से संबंध भी साफ़ हुआ है । एक तरफ़ इस वर्ग का इलीट पर आर्थिक रूप से निर्भर या

परजीवी होना दिखता है तो दूसरी तरफ़ नशे में इस वर्ग के बुद्धिजीवी को याद आता है कि यही उच्चवर्ग समाज में आर्थिक वैषम्य का कारण है और वह इस वर्ग के प्रतिनिधियों पर अपनी वाणी से आघात करते हुए उस सामाजिक संरचना में 'मिसफिट' हो जाता है। ऐसा करते हुए वह अपने अपराधबोध से तात्कालिक मुक्ति पा लेता है। यह स्थिति शाश्वत है। यह एक तरह का छद्म है जहाँ मध्यवर्ग का शिक्षित समाज सब कुछ समझकर भी अपने चेतन मन में उच्चवर्ग के प्रति रोष पैदा नहीं होने देता। सच ही इस वर्ग की सारी नीतियाँ मानसिक हैं, सिद्धांत तो बहुत ऊँचे हैं पर व्यवहार उनका कहीं होता नहीं दिखता। यह नाम बड़े और दर्शन छोटेवाली ही हालत है। राजेन्द्र यादव ठीक ही कहते हैं–"मध्यवर्गीय व्यक्ति मानसिक रूप से छः कदम आगे चलते हैं परंतु व्यावहारिक रूप से दो कदम भी नहीं चल सकते।"[93] इस प्रकार से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यह वर्ग उच्चवर्ग की मदद करता रहता है। उसकी ये 'चुप्पियाँ' 'फेंस के इधर और उधर' की दुनिया के 'संबंध' में 'अनुभव' की नई 'रचना-प्रक्रिया' निर्मित करती हैं, जहां सार्थक मानवीय मूल्यों को 'शेष होते हुए' देखकर भी वह, उनमें कोई 'दिलचस्पी' नहीं लेता, ये इस 'दिवास्वप्नी' वर्ग की 'सीमाएँ' नहीं तो और क्या हैं, जहाँ वह ग़लत कारणों से एक भटके राही की तरह 'यात्रा' कर रहा है, जिसकी मंजिल 'मनहूस बंगला' ही हो सकता है।

ज्ञानरंजन ने बहुत वर्षों पहले ही परवर्ती भारत में आनेवाले भूमंडलीकरण के ज्वार को देख लिया था और इस **उदारीकृत समाज में बाज़ार की नीतियों के बीच मध्यवर्ग की अनीतियों की दिशा** भी जान ली थी। शायद इसीलिए वे 'बहिर्गमन' में लिखते हैं–"इन लोगों (बुर्जुआ) ने वातावरण में हवा भरनी शुरू की। अख़बार, टेलीविज़न, प्रकाशनों और कला संस्थाओं को इन्होंने हलचल से भर दिया।.....मनोहर और सोमदत्त ने लिखा-पढ़ी, संपर्क और फिक्र करने का

काम आरंभ किया ।....इन्होंने राम-रावण का प्रश्न समाप्त कर दिया ।.....असंख्य लोगों ने इनकी आवाज़ को चीखते हुए ग्रहण किया । इस जमात ने जूझते हुए मूर्ख लोगों को दरकिनार कर दिया ।"[94] यहाँ यह साफ़-साफ़ देखा जा सकता है कि इस भूमंडलीकृत समाज में समाज का निम्नवर्ग, जो हमारे होने एवं विकास का कारण है, उस वर्ग का ही नामोनिशान यहाँ गायब कर दिया गया । उच्चवर्ग एवं मध्यवर्ग का यह षड़यंत्र कितना घातक होगा, यह तो भावी समय ही बताएगा । अपनी झूठी विद्वता के दंभ एवं दिखावे में व्यस्त मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी आज अपनी प्रगतिशील सामाजिक भूमिका से कट चुका है और वह प्रतिक्रियावादी शक्तियों के साथ खड़ा होकर सर्वहारा वर्ग के शोषण में अपनी अहं भूमिका निभा रहा है । इन कहानियों में जो 'भद्रलोक' हैं, वे बड़े-बड़े पदों पर कार्यरत लोग, व्यवसायी-व्यापारी एवं अपने पेशे से रुपये बटोर रहे लोग ही हैं, जो मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की आत्मा, उसकी चेतना को भी इसी क्रम में पी जाना चाहते हैं, जिससे समाज में उसकी प्रगतिशील भूमिका का ख़ात्मा हो जाए । ज्ञानरंजन यहाँ साफ़-साफ़ दिखलाते हैं कि पूंजीवादी जनतंत्र में अलग-अलग खेमों में बंटकर कैसे आज व्यक्ति ही व्यक्ति को सहन नहीं कर पा रहा है । आप जब तक बाज़ार व्यवस्था के अनुकूल हैं, अनुरूप हैं, तब तक आप व्यवस्था के साथ हैं, उसकी गोद में हैं, जहां आपने नज़रें टेढ़ी कीं या प्रगतिशील हुए, व्यवस्था आपको 'घंटा' कहानी के 'मैं' की तरह से प्रताड़ित करके बाहर निकाल देगी और आप धूल झाड़कर चलने के अलावा कुछ और नहीं कर सकेंगे । यहीं से उस व्यक्तिवादी स्वार्थ-नीति का पोषण होता है, जो सांप्रतिक शिक्षित शहरी मध्यवर्ग की विशेषता है । यह सारा चाक-चिक्य अपने आस-पास एक कृत्रिम यथार्थ गढ़ने के कारण निर्मित हुआ है, जो भूमंडलीकृत समाज की विशेषता है । मिथ्या का ऐसा सत्यापन ही तो पूंजीवादी जनतंत्र में बाज़ार की अनीतिमूलक नीति का गुण होता है और इसी में विवेकशून्य हो, अपने स्वार्थों के

समीकरण बैठाता मौकापरस्त हमारा मध्यवर्ग है । ज्ञानरंजन की कहानियाँ चाहे वह 'एक नमूना सार्थक दिन' हो या 'घंटा', या 'बहिर्गमन' या फिर 'अनुभव' सभी में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के उपर्युक्त गंदे चेहरे पर तेज़ाब की तरह का मारक व्यंग्य डाल दिया गया है । इस पाखंड की ऐसी अद्‌भुत पंहचान साठोत्तरी कहानी में विरल ही है ।

4.10 ज्ञानरंजन की कहानियों में मध्यवर्ग का स्वरूप : हिंदी आलोचना के वातायन से :

हिंदी के कई आलोचकों ने ज्ञानरंजन की कहानियों के मध्यवर्गीय चेहरे की पहचान की है । इन आलोचकों ने ज्ञानरंजन के कहानीकार का वह रवैया, जो वे मध्यवर्ग के प्रति अपनाते हैं, उस पर अपनी विश्लेषणात्मक दृष्टि डाली है । इस संदर्भ में सबसे पहला नाम आता है डॉ. सुरेन्द्र चौधरी का; वे लिखते हैं–"सन् 60 के बाद के मध्यवर्गीय अनुभव नाटकीय भी हैं और संप्रसारी भी हैं । ये अनुभव स्वयं अपने स्थापित अनुभव-रिक्थ से टकरा जाते हैं । इस टकराहट में झख और आत्मविवेक की भागीदारी में अलगाव के कौन-से ऐसे लक्षण प्रकट होते हैं जिन्हें हिंदी कहानी की समकालीनता के रूप में पहचाना जाना चाहिए ? ज्ञान एक जेब में झंडा और दूसरी जेब में घोषणा-पत्र भले न रखते हों पर वे जानते हैं–'जुड़ना भोक्ता होना है, जुड़ोगे तो भोगोगे ।' और इस मोक्ष मानस को एक गहरी लकीर 'घंटा' में काटती चली गई है ।"[95] "वस्तुत: ज्ञानरंजन की कहानियों में उथल-पुथल है, प्रचलित को तोड़ने व किसी नवीन को रचने की जो कशमकश है, उसकी रचनात्मक एवं सकारात्मक समझ के लिए छठे-सातवें दशक के मध्यवर्ग एवं नवजारण के द्वंद्व की तहों में जाना जरूरी हो जाता है ।"[96]

ज्ञानरंजन की कहानियों में मध्यवर्ग की भूमिका पर डॉ. प्रभा (व्यौहार) खरे का मानना है–" ज्ञानरंजन ही एक मात्र ऐसे कहानीकार हैं, जो 'उदरंभरी' मध्यवर्ग की नस-नस पहचानते हैं । वे इस वर्ग के आत्मलीन आचरण को स्तर-दर-स्तर खोलते चलते हैं । 'किंचित आघात' देती हुई उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन का खोखलापन, उसकी अस्थिर मानसिकता, विसंगतियाँ, विद्रूपताओं की गहरी पहचान मौजूद है । निजत्व का आभास देती हुई इन कहानियों में सार्वजनिक सच्चाई अंतर्व्याप्त है । .....परिवार की धुरी पर परिक्रमा करती इन कहानियों में ऐसे अलगाव, ऐसे अभाव, शेष होते संबंधों के टूटने-बिखरने के संदर्भ मौजूद हैं, जिनके तहत मनुष्य क्रय विक्रय की चीज़ जैसा हो जाता है, विरासत का विचार वात्सल्य को ख़त्म कर देता है और प्रेम, विवाह के रूप परिवर्तित होकर केवल शरीर तक सीमित हो जाते हैं, रिश्ते कुंठित हो जाते हैं और निरर्थक वर्जनाओं के बीच सामाजिक में दोहरापन उत्पन्न होता है, जो व्यक्तित्व की संश्लिष्टता (इंटेग्रिटी) को भंग कर देता है और एक पाखंडपूर्ण व्यक्तित्व को जन्म देता है ।"[97]

ज्ञानरंजन का कहानीकार अपनी कहानियों की वस्तु योजना का नियोजन कैसे करता है और इसमें मध्यवर्गीय समाज की क्या भूमिका है-इसे परमानंद श्रीवास्तव कुछ इस तरह उद्घोषित करते हैं–"ज्ञानरंजन ने औसत मध्यवर्गीय ज़िंदगी के छोटे-छोटे दुःखों, अवरोधों, स्वार्थों, परिवर्तनशील स्थितियों और प्रतिक्रियाओं की पहचान के बीच ही यथार्थ और अयथार्थ के तनाव को चित्रित करने के लिए ऐसी भाषा का विकास किया है जिसमें आक्रामकता और खिलवाड़ का दिलचस्प संगठन है । ज्ञानरंजन की कहानियों में ऊपर-ऊपर दिखाई देने वाला हल्कापन या व्यंग्यात्मक खिलवाड़ी स्वभाव अपने आप में बहुत भरोसे की चीज़ नहीं है– देखने की चीज़ यह है कि समय, परिस्थिति और मानवीय स्वभाव

या संबंध की अंतर्निहित जटिलता की पहचान में इस स्वभाव-युक्ति का कैसा उपयोग किया गया है । एक पीढ़ी और दूसरी पीढ़ी के बीच के मौन कलह से लेकर औसत ज़िंदगी की भयग्रस्त व्यर्थता, प्रतीक्षा, हताशा, मोहभंग के अनुभव ज्ञानरंजन की कहानियों में अलग-अलग भी उभरते हैं तो एक ही बड़ी सच्चाई पैदा होती है– वह अनुभव या अहसास की तीव्रता को घटाती नहीं, सिर्फ भावुकता को अपनी काट-तराश से अलग कर देती है ।"[98]

मध्यवर्गीय ज़िंदगी की गैर-रूमानी छवि के चितेरे ज्ञानरंजन की कहानियों के बारे में डॉ. शिव कुमार मिश्र लिखते हैं– "अपने रचनाधर्मी उन्मेष के दौर में जिस सोच, जिस ढब और मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ की पहचान को रूप देने वाली कहानियाँ ज्ञानरंजन ने लिखी थीं, एक लंबे अंतराल के बावजूद वे अपने रचनात्मक एवं निहायत गैर-रोमांटिक रुख में अनूठी, अछूती और अननुकरणीय है ।"[99] वे इसी संदर्भ में बात को आगे बढ़ाते हुए लिखते हैं– "मध्यवर्ग की ज़िंदगी पर बहुतेरे कहानीकारों ने कलम चलाई है, किंतु एक-एक तेवर की इतनी सटीक पहचान उसकी बनती-बिगड़ती आकृति का इतना पारदर्शी-बोध, इतनी दयनीयता और कमीनेपन की इतनी तलख अनुभूति, मूल्यों में टकराव की इतनी अंतरंग अनुभूति तथा अभिव्यक्ति, संस्कार और विवेक के बीच होने वाली कशमकश का इतना तीखा अहसास, उसके खोखले अहं, दिखावटी और बनावटीपन पर इतनी खरी टिप्पणियाँ कम ही मिलेंगी, जितनी ज्ञानरंजन की कहानियों में हैं ।"[100] कुछ ऐसा ही सोचना है हृदयेश का–"ज्ञान की कहानियाँ मध्यम वर्ग के पारिवारिक संबंधों, उसके युवा सदस्यों की आत्मकेंद्रीयता, स्खलन व पतन की निर्मम पड़ताल हैं, अपने पाठकों को एक डरावने अनुभव-संसार में ले जाने वाली ।"[101]

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने ज्ञानरंजन की कहानियों को एक अन्य नज़रिए से देखा है–....."भारतीय मध्यवर्गीय परिवार अनेक प्रकार की रूढ़ियों और रूमानी कल्पनाओं के पुंज हैं। ज्ञान अपनी कहानियों में इसका विरोध करते हैं। उनकी कहानियाँ वैज्ञानिक दृष्टि के अनुरूप नैतिक परिवर्तन की माँग को रेखांकित करती हैं। वे उस जड़ता को तोड़ना चाहती हैं, जो परिवर्तन की प्रक्रिया में अवरोधक बनती है।"[102]

ज्ञानरंजन की कहानियों में मध्यवर्ग के स्वरूप पर विचार करते हुए अतुलवीर अरोड़ा ने बहुत सही कहा है–"ज्ञानरंजन इस (मध्य) वर्ग की तमाम बौनी हैसियतों, वर्गीय अंतर्विरोधों, विसंगतियों और विडंबनाओं का मूर्त्तन-अमूर्त्तन भाषा के किन्हीं तेज़, कटावदार, नुकीले और निर्मम चाकुओं से लगातार करता है और वर्गीय हक़ों की छद्म लड़ाई के पक्ष-विपक्ष में बयान देने के लिए खड़ा नहीं होता बावजूद इस सच के कि उसकी कहानी वर्गीय घेरों की शिनाख्त में वृत्तान्तरों की रचना करती चलती है और अनेक बार लेखक को बयान देने के नाजुक क्षणों तक भी ले जाती है।"[103] इसी संदर्भ में वे आगे कहते हैं–"भले ही अधिकांशतः इसका (ज्ञानरंजन का) लेखन वर्ग-विशेष (मध्यवर्ग) के हिस्से में चला गया, लेकिन यहाँ भी ज्ञानरंजन की मुद्रा अपने समकालीनों से अलग इसलिए पड़ती है कि उनका मध्यवर्गीय वकालती अंदाज नदारद है।"[104] ज्ञानरंजन की कहानियों में बुद्धिजीवी समाज के छद्म पर अतुलवीर अरोड़ा लिखते हैं–"मैं इसे शिक्षित जन कहना पसंद करूँगा क्योंकि यह निश्चित तौर पर अपने और अपने आस-पास एक संस्कृति और एक दर्शन निर्मित करने में सफल रहा है-भले ही यह संस्कृति और दर्शन नकली या छद्म क्यों न हो। ज्ञानरंजन की बहुधा कहानियाँ इस छद्म संस्कृति और दर्शन का शिकारी कुत्तों की तरह पीछा करती हैं और इसका कोई भी एक हिस्सा पूरे की नकल में असल स्थापित करता हुआ

भाषा की लपलपाती जीभों और खूंखार दाँतों का भोजन बनता रहता है । इनमें व्यक्ति की तमाम हरकतों को सामाजिक संदर्भों में इतनी बारीकी से देखा गया है कि ऊपरी तौर पर ये सामाजिक संदर्भों की कहानियाँ लगती ही नहीं ।"[105] सचमुच ज्ञानरंजन मध्यवर्ग की तमाम प्रवंचनाओं को· आड़े हाथों लेने वाले कहानीकार हैं ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि ज्ञानरंजन की कहानियों में मध्यवर्गीय समाज के सच की गहरी पड़ताल हुई है । वे एक कुशल बाजीगर की तरह से इस वर्ग की न्यूनताओं की ख़बर लेते हैं, ऐसा करते हुए वे कहीं भी, कभी भी अपने वर्ग के प्रति मोह या ममता का शिकार नहीं होते बल्कि भावुकता के अंधकार से निकलकर मानवता की रोशनी में वे इस वर्ग की सच्चाइयों को देखते हैं । इसे ज्ञानरंजन की वर्गमुक्त होने की कोशिश करना ही समझना चाहिए । मध्यवर्ग आज भले ही अपनी ऐतिहासिक प्रगतिशील भूमिका से च्युत हो चुका हो, परंतु मध्यवर्ग से ही ताल्लुक रखने वाले इस कहानीकार ने अपना लेखकीय दायित्व समझा है और उससे मुंह मोड़नेवालों की अच्छी ख़बर ली है । मध्यवर्गीय जीवन के विविध चेहरों को बेनक़ाब करने की कोशिश में उन्होंने एक लेखक के रूप में अपनी वर्ग-भावना का भी परीक्षण किया है और यह काम वे पूरी ईमानदारी से करते हैं । उच्चवर्ग एवं निम्नवर्ग के बीच मध्यवर्ग की वर्गीय स्थिति का जायजा तो वे लेते ही हैं, इसके साथ ही इन दोनों वर्गों के साथ इस वर्ग के सांप्रतिक वर्ग-संबंध की जांच भी करते हैं । यह अत्यंत ही सुखद अनुभूति का विषय हो सकता है कि किसी बैनर के नीचे होने का शोर मचाए बिना वे एक लेखक के रूप में समाज के प्रति अपने ईमानदार होने का परिचय तो देते ही हैं, उसके साथ ही उसके प्रति अपनी प्रतिबद्धता भी ज्ञापित करते हैं मगर बयानबाजी से नहीं, अपनी इन्हीं छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से ।

संदर्भ

1. रश्मि डॉ. इंदु, नई कहानी का स्वरूप विवेचन, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1992, पृ.- 80
2.. रेणु फणीश्वरनाथ, राष्ट्र-निर्माण में लेखक का सहयोग, प्रकाशन समाचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, जुलाई 1977 में प्रकाशित लेख ।
3. वही
4. ज्ञानरंजन, बहिर्गमन, यात्रा, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1971, पृ.- 99
5. कमलेश्वर, नई कहानियाँ, वर्ष : 5, सितंबर : 1964, संपादकीय
6. कामतानाथ, नई कहानियाँ, वर्ष : 6, अंक-8, दिसंबर : 1965
7. कृष्ण कुमार, कहानी के नए प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2005, पृ.- 102
8. सं/सिंह गुरचरण, पंडित सुमन, नरेन्द्र मोहन रचनावली, खंड-7 (कथा विमर्श), संजय प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष : 2006, पृ.-210
9. वही, पृ.- 210
10. ज्ञानरंजन, शेष होते हुए, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 65
11. श्रीवास्तव डॉ. परमानंद, सं./निर्मोही देश, पल प्रतिपल, अंक : 45, जुलाई-सितंबर-1998, आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला, पृ.-106
12. प्रेमचंद, सं./लाल डॉ. लक्ष्मीनारायण, कफ़न, कथा भारती, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण : 2004, पृ.- 10

13. ज्ञानरंजन, संबंध, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.-126
14. ज्ञानरंजन, कलह, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 27
15. ज्ञानरंजन, शेष होते हुए, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 64
16. वही, पृ.- 64
17. वही, पृ.- 65
18. वही, पृ.- 68
19. ज्ञानरंजन, संबंध, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 117
20. ज्ञानरंजन, कलह, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 25
21. ज्ञानरंजन, अमरूद का पेड़, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1997, पृ.-14
22. ज्ञानरंजन, गोपनीयता, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 39
23. ज्ञानरंजन, कबाड़ख़ाना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम परिवर्द्धित संस्करण : 2002, पृ.- 61
24. ज्ञानरंजन, शेष होते हुए, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 69
25. ज्ञानरंजन, कलह, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 57

26. ज्ञानरंजन, दिवास्वप्नी, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 46
27. ज्ञानरंजन, हास्यरस, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 89
28. श्रीवास्तव डॉ. परमानंद, सं./निर्मोही देश, पल प्रतिपल, अंक : 45, जुलाई-सितंबर-1998, आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला, पृ.- 103
29. उपाध्याय विश्वंभरनाथ, सं./मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, वेधक पर्यवेक्षण बिडंबक ब्रूडिंग और त्रासद हास्य की कहानियाँ, कहानीकार ज्ञानरंजन, नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1998, पृ.- 44
30. सिंह यदुनाथ, सं./मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, ज्ञानरंजन की कहानियाँ 'इतिहास की अनिच्छुक शक्तियों' से आदमी के संघर्ष की व्यथा-कथाएँ, कहानीकार ज्ञानरंजन, नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1998, पृ.- 99
31. प्रकाश आनंद, सं./मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, मध्यवर्गीय लेखन में जनवादी दिशा की खोज : ज्ञानरंजन की कहानियाँ, कहानीकार ज्ञानरंजन, नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1998, पृ.-124
32. ज्ञानरंजन, हास्यरस, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (राधाकृष्ण) : 1997, पृ.- 94
33. उपाध्याय विश्वंभरनाथ, सं./मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, वेधक पर्यवेक्षण बिडंबक ब्रूडिंग और त्रासद हास्य की कहानियाँ, कहानीकार ज्ञानरंजन, नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1998, पृ.- 45
34. ज्ञानरंजन, दांपत्य, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 99

35. ज्ञानरंजन, हास्यरस, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 91
36. ज्ञानरंजन, दिवास्वप्नी, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 49
37. ज्ञानरंजन, छलांग, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 84
38. ज्ञानरंजन, कलह, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 28
39. ज्ञानरंजन, दो शब्द, मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एंड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1979
40. वही
41. ज्ञानरंजन, दांपत्य, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 100
42. ज्ञानरंजन, चुप्पियाँ, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 17
43. ज्ञानरंजन, बहिर्गमन, यात्रा, रचना प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1971, पृ.- 97
44. वही, पृ.-104
45. सं./नवलजी, नालंदा विशाल शब्द सागर, आदीश बुक डिपो, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1988, पृ.- 1388
46. ज्ञानरंजन, फेंस के इधर और उधर, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 58-59
47. वही, पृ.- 56

48. ज्ञानरंजन, दिलचस्पी, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.-78
49. ज्ञानरंजन, चुप्पियाँ, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 18
50. ज्ञानरंजन, फेंस के इधर और उधर, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 61
51. ज्ञानरंजन, दिलचस्पी, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 77
52. ज्ञानरंजन, फेंस के इधर और उधर, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 56
53. ज्ञानरंजन, अमरूद का पेड, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 11
54. ज्ञानरंजन, फेंस के इधर और उधर, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 60
55. ज्ञानरंजन, दिलचस्पी, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 78
56. ज्ञानरंजन, शेष होते हुए, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 65
57. ज्ञानरंजन, सीमाएं, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 53
58. ज्ञानरंजन, फेंस के इधर और उधर, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 58
59. वही, पृ.- 59

60. ज्ञानरंजन, यात्रा, यात्रा, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1971, पृ.- 69
61. वही, पृ.- 72
62. वही, पृ.- 65
63. ज्ञानरंजन, कबाड़ख़ाना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम परिवर्द्धित संस्करण : 2002, पृ.- 124
64. ज्ञानरंजन, क्षणजीवी, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 43
65. वही, पृ.- 43-44
66. वही, पृ. - 41
67. वही, पृ.- 40
68. वही, पृ.- 42
69. वही, पृ.- 42
70. वही, पृ.- 43
71. वही, पृ.- 42-43
72. वही, पृ.- 42
73. ज्ञानरंजन, शेष होते हुए, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 74
74. वही, पृ.-75
75. वही, पृ.-75
76. ज्ञानरंजन, दांपत्य, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 101

77. ज्ञानरंजन, अनुभव, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 212
78. ज्ञानरंजन, संबंध, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 116
79. ज्ञानरंजन, शेष होते हुए, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 66
80. वही, पृ.- 66
81. ज्ञानरंजन, चुप्पियाँ, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 20
82. प्रकाश आनंद, सं./मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, ज्ञानरंजन की कहानियाँ, 'इतिहास की अनिच्छुक शक्तियों' से आदमी के संघर्ष की व्यथा-कथाएँ, कहानीकार ज्ञानरंजन, नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1978, पृ.- 122
83. 'उद्धृत' वैद डॉ. यशपाल, सं./निर्मोही देश, पल प्रतिपल, अंक : 45, जुलाई-सितंबर-1998, आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला, पृ.-114
84. ज्ञानरंजन, हास्यरस, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 92
85. ज्ञानरंजन, दांपत्य, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 104
86. ज्ञानरंजन, रचना प्रक्रिया, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 120
87. वैद डॉ. यशपाल, सं./निर्मोही देश, पल प्रतिपल, अंक : 45, जुलाई-सितंबर-1998, आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला, पृ.- 117

88. ज्ञानरंजन, छलांग, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 87
89. ज्ञानरंजन, घंटा, यात्रा, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1971, पृ.- 86
90. ज्ञानरंजन, अनुभव, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1997, पृ.- 219
91. वही, पृ.- 219
92. चौधरी डॉ. सुरेन्द्र, सं./निर्मोही देश, पल प्रतिपल, अंक : 45, जुलाई-सितंबर-1998, आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला, पृ.- 112
93. चाव्हाण डॉ. अर्जुन, राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1995, पृ.- 259
94. ज्ञानरंजन, बहिर्गमन, यात्रा, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1971, पृ.- 112-113
95. चौधरी डॉ.सुरेन्द्र, सं./निर्मोही देश, पल प्रतिपल, अंक : 45, जुलाई-सितंबर : 1998, आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला, पृ.- 44-45
96. खरे डॉ. प्रभा (व्यौहार), सं./निर्मोही देश, पल प्रतिपल, अंक : 45, जुलाई-सितंबर : 1998, आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला, पृ.-126
97. वही, पृ.- 126-127
98. श्रीवास्तव डॉ. परमानंद, सं./निर्मोही देश, पल प्रतिपल, अंक : 45, जुलाई-सितंबर : 1998, आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला, पृ.- 101
99. मिश्र डॉ. शिवकुमार, सं./निर्मोही देश, पल प्रतिपल, अंक : 45,जुलाई-सितंबर : 1998, आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला, पृ.- 59
100. वही, पृ.- 61

101. हृदयेश, सं./निर्मोही देश, पल प्रतिपल, अंक : 45, जुलाई-सितंबर : 1998, आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला, पृ.- 43
102. तिवारी डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, सं./मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, ज्ञानरंजन की कहानियाँ, कहानीकार ज्ञानरंजन, नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण: 1978, पृ.-114
103. अरोड़ा अतुलवीर, सं./मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, परिवेश, शिक्षित-जनकी संस्कृति का और भाषाई निर्ममता का आविष्कार करती सामाजिक अनुभवों की कहानियाँ...., कहानीकार ज्ञानरंजन, नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1978, पृ.-76
104. वही, पृ.-78
105. वही, पृ.-81-82

◆◆◆